ओ३म्

आर्य प्रतिनिधि सभा म.प्र. व विदर्भ का मुख पत्र

# आर्य सेवक

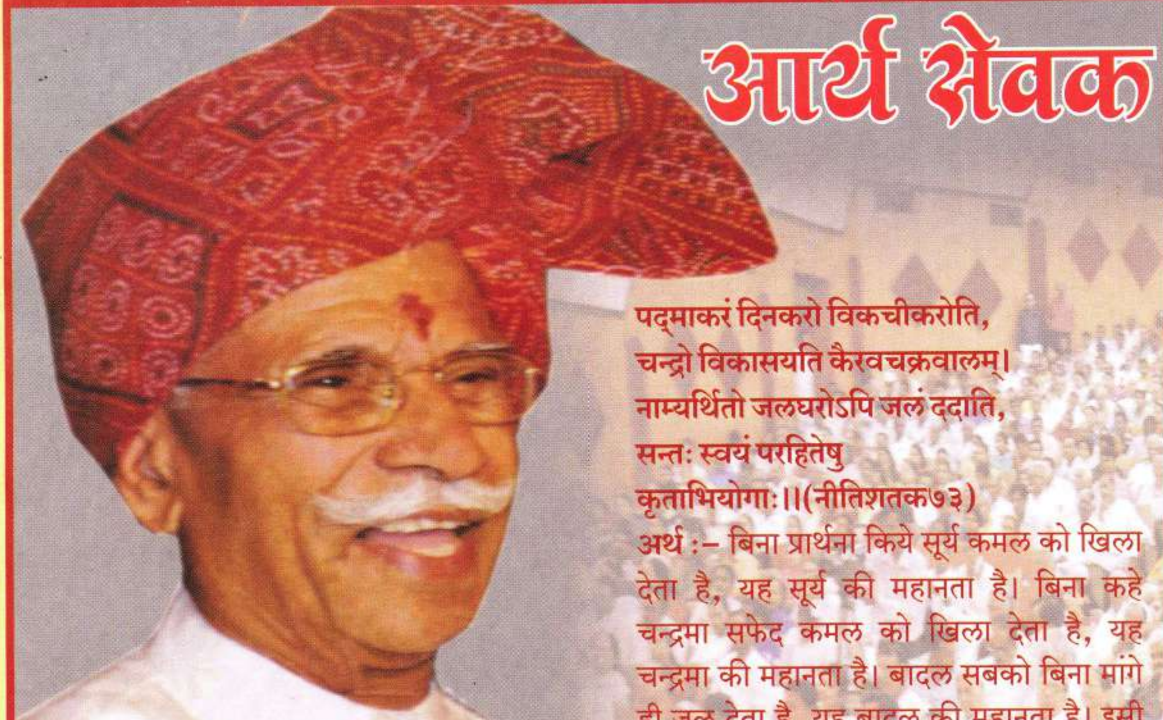

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति,
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति,
सन्तः स्वयं परहितेषु
कृताभियोगाः।।(नीतिशतक७३)

अर्थ :– बिना प्रार्थना किये सूर्य कमल को खिला देता है, यह सूर्य की महानता है। बिना कहे चन्द्रमा सफेद कमल को खिला देता है, यह चन्द्रमा की महानता है। बादल सबको बिना मांगे ही जल देता है, यह बादल की महानता है। इसी प्रकार सन्त स्वभाव के लोग बिना स्वार्थ के परोपकार में संलग्न रहते हैं, ऐसे लोग निश्चय ही महान् होते हैं। श्री हरिश्चन्द्र आर्य भी बिना मांगे और निःस्वार्थभाव से समाज का उपकार करते रहे हैं।

सभा कार्यालय - दयानन्द भवन, मंगलवारी बाजार, सदर, नागपुर (महाराष्ट्र)

# – मधुर स्मृतियाँ –

मातृशक्तियों का सम्मान करते हुए राव हरीशचंद्रजी आर्य

ओ३म्

# आर्य सेवक

## आर्य प्रतिनिधि सभा म. प्र. व विदर्भ का मुखपत्र

वर्ष – ११६ अंक १६
सृष्टि संवत १९६०८५३११९
दयानन्दाब्द – १९५
संवत – २०७५
सन् २०२० फरवरी–मार्च

**प्रधान**
पं. सत्यवीर शास्त्री, अमरावती
मो.नं. ०९४२२१५५८३६

**मंत्री एवं प्रबंधक सम्पादक**
अशोक यादव
मो. ०९३७३१२११६३
०९५११८३८९८१

**सम्पादक एवं उपप्रधान**
जयसिंह गायकवाड़, जबलपुर
मो. ०९४२४६८५०९१
e-mail : jasysinghgaekwad@gmail.com
निवास - ५८०, गुप्तेश्वर वार्ड,
कृपाल चौक, मदन महल, जबलपुर

**सह सम्पादक**
प्रा. अनिल शर्मा, नागपुर
मो. ९३७३१२११६४
मनोज शर्मा
मो. ९५६१०७९८९४

**कार्यालय पता :**
दयानन्द भवन, मंगलवारी बाजार,
सदर, नागपुर-४४०००१ महाराष्ट्र
दूरभाष क्र. ०७१२-२५९५५५६

## अनुक्रमणिका

| क्र. | लेख | लेखक | पृष्ठ क्र. |
|---|---|---|---|
| १. | श्रद्धांजली एक कर्मठ व्यक्तित्व को | - | २ |
| २. | क्षमा के अवतार दयानंद | - | ३ |
| ३. | सनातन और नवीन का अद्भुत समन्वय | - | ४ |
| ४. | हम सर्वत्र मातृभूमि के यश की रक्षा करें | - | ५ |
| ५. | जन्म मरण का चक्र ये | आचार्य धर्मधर | ५ |
| ६. | त्याग से मुक्ति | स्वामी वेदानन्द तीर्थ | ६-७ |
| ७. | भारत और भारतीयता के लिए स्वामी श्रृद्धानंद के राष्ट्रवादी प्रयास | डॉ. सुरेन्द्र कुमार | ८-१० |
| ८. | वैदिक रेफरेंस लाइब्रेरी | विनर्य आर्य | ११-१२ |
| ९. | काव्य रुप में आर्य समाज के नियम | सुरेश गीर सागर | १२ |
| १०. | वेदाङ्ग छन्दः शास्त्र, स्वरुप एवं उपयोगिता | डॉ. जयदत्त उप्रेती | १३-१८ |
| ११. | सुखी समाज की प्राथमिक आवश्यक समस्या | पं. उम्मेदसिंह | १९-२१ |
| १२. | ब्रम्ह मुहूर्त में जाग जाओ जीवन का प्रथम व्रत | आचार्य वेद भूषण | २२-२५ |
| १३. | वर्तमान युग में त्रेतवाद का प्रतिपादन | पं. उम्मेदसिंह विशारद | २६-२८ |

* * * * *

टीप - प्रकाशित कृतियों में व्यक्ति विचार लेखकों के हैं इनसे आर्य सेवक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

# श्रद्धांजली एक कर्मठ व्यक्तित्व को

मनुष्य के जीवन में विषम परिस्थितियों के आगमन के संकेत आंतरिक जीवन में अतृप्ति की और बाह्य जीवन में नियति की उपस्थिती से मिलने लगते हैं। अंतःकरण की गरिमा शुष्क व शिथिल होने लगती है। वृक्ष की जड़े मजबूत और गहरी होती हैं तो वे वृक्ष को भी सूखने नहीं देतीं। मौसम अनुकूल न होने पर भी वृक्ष हरा-भरा रहता है।

राव साहब की आत्मा की रौशनी आज भी आर्य जगत को अलौकिक प्रकाश दे रही है। उनके प्रेम में त्याग स्वेच्छा से रहता था। जिस तरह वृक्ष फल को त्याग करते समय, माँ बेटे को दुग्धपान कराते समय, उसे कष्ट का भान नहीं होता वैसे ही राव साहब को दान करते समय आत्मिक तृप्ति मिलती थी। विशाल हृदय था उनका, आर्य समाज, हंसापुरी के पदाधिकारियों, सदस्यों के प्रति, उनके प्रेम त्याग-उदारता-दया के कारण ही आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्यप्रदेश व विदर्भ की विषम परिस्थितियों में भी उनके आशीर्वाद से हर समस्याओं का समाधान करते हुए सभा को संभालते हुए, प्रेम भाव को बरकरार रखते हुए आर्य समाज के हित में कार्य करने की प्रेरणा समाज ने राव साहब से ही प्राप्त की।

**एतद्वै मनुष्यस्य अमृत्वं यत्सर्वमायुरेति।**

सारी आयु बोलते हुए, सुनतेहुए, सबका उपकार करते हुए, हजारों हाथों से दान करते हुए, स्वस्थ बलिष्ठ रहते हुए, अमर जीवन जीते हुए आपने अपना शरीर त्यागा यह दैवी विधान है। आइये! हम सब मिलकर उनके विचारों को आगे बढ़ायें यही हमारी उनके प्रति सच्ची श्रृद्धांजली होगी।

ओ३म शान्तिः.... शान्ति....शान्ति....

**-अशोक यादव**
मंत्री व ट्रस्टी
आर्य प्रतिनिधि सभा मध्यप्रदेश व विदर्भ
पंजियन संख्या एफ-१०९(एन)
नागपुर

* * * * *

# क्षमा के अवतार दयानन्द

महापुरुषों के जीवन में अनेक दैवी तथा महान् गुण हुआ करते हैं। सद्गुण रूपी सुमन-माला से ही उनका कोमल तथा करुणामय कण्ठ सदैव शोभायमान रहता है। महांत्माओं के सकल सद्गुणों में क्षमाशीलता भी एका महान् गुण है। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनके जीवन में क्षमाशीलता के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। ऐसे क्षमाशील महापुरुष देवता के नाम से पुकारे जाते हैं। क्योंकि वे अपने अनिष्टकर्त्ता को भी सदैव क्षमादान ही किया करते हैं।

पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ श्रीमद्दयानन्दप्रकाश में महाराज की क्षमाशीलता का वर्णन करते हुए लिखते हैं-

(१) महाराज का स्वभाव अति शान्त, क्षमाशील तथा उदार था। वे कुपित होना तो कभी जानते ही न थे। उनकी अमृतभाषिणी मधुर वाणी में अश्लीलता तथा अपशब्दों का लेश भी न था। उन पर लोगों ने क्या दिन तथा क्या रातअनेक भीषण प्रकार किये। ईंट और पत्थर बरसाये। किन्तु महाराज ने कभी किसी को ताड़ना तक भी नहीं की। वे प्रतीकार में पूर्ण समर्थ होते हुए भी अपराधी पुरुषों के भीषण प्रहारों को भी प्रसन्नतापूर्वक सहते रहे।

(२) ऋषि-जीवन में उनकी क्षमाशीलता के बीसियों उदाहरण मिलते हैं। राव कर्णसिंह पुराण प्रिय पण्डितों के बहकावे में आ क्रुद्ध होकर उनकी जान तक लेने का उद्यत हो जाते हैं और तेज तलवार से उन पर आक्रमण कर देने हैं, किन्तु ऋषिवर अपनी आत्मरक्षा के लिए अपने अतुल ब्रह्मचर्य के बल से उनकी तलवार को पकड़ उसके दो टुकड़े कर देते हैं। किन्तु क्रूर कर्णसिंह को कुछ भी कष्ट नहीं देते हैं।

(३) स्वामी जी अपने हत्यारे जगन्नाथ को धनराशि देकर नेपाल की ओर भगा देते हैं। भला इससे बढ़ कर विश्व में क्षमाशीलता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण अन्यत्र कहीं मिलेगा। राजस्थान के एक प्रसिद्ध कांग्रेस के नेता ने ऋषि के सम्बन्ध में वार्तालाप करते हुए मुझे कहा-मैं तो दयानन्द को दुनिया का सब सन्तों से अधिक दयालू तथा क्षमाशील मानता हूँ। ऐसे तो बहुत से उदाहरण मिलते है। जहाँ अन्य सन्तों ने अपने अहित कर्त्ता अपराधी को क्षमा प्रदान कर दी, किन्तु ऐसा उदाहरण विश्व भर में कहीं नहीं मिलता कि किसी सन्त ने अपने प्राणहर्ता कोअपने पास से रुपये देकर उसे वहाँ से छिपाकर मौत के पंजे से भी छुड़ा लिया हो। आज आर्य पुरुषों में थोड़े से विचार भेद होने पर भी वे एक दूसरे के व्यवहार को सहन नहीं कर सकते, परस्पर हम आर्य पुरुष भी एक दूसरे को बदनाम करने तथा उसका अहित करने में तैयार जाते हो हैं। दुःख तो यह है कि अपने को आर्यसमाज के विद्वान् तथा नेता कहने वाले भी इस संक्रामक रोग के शिकार हो रहे हैं। हमारे विद्वान् थोड़ी सी विचार में भिन्नता होने पर भी एक दूसरे के प्रति अपने लेखों तथा व्याख्यानों में जान बूझ कर ऐसे अप शब्दों का प्रयोग करते हैं कि जिनको पढ़ कर तथा सुनकर बहुत दुःख होता है। और ह्रदय में विचार उठता है क्या यही असहिष्णु आर्य विद्वान् तथा नेता ऋषि के मिशन को विश्व में फैलायेंगे हमारा यह परस्पर का असहिष्णु व्यवहार आर्य समाज की भी अवनति का कारण बन रहा है। अतः आइये हम भी अपने जीवन में यह व्रत लें कि हम परस्पर की त्रुटियों तथा दोषों की उपेक्षा करते हुए एक दूसरे के गुणों का दर्शन कर उन्हें अपने जीवन में धारण करेंगे। ऐसा करने पर जहां हमारे जीवन सद्गुणों से पूर्ण होकर पवित्र बनेंगे, वहां परस्पर की वैमनस्यता के कारण आर्यसमाज में जो शिथिलता आ गई है उसे भी दूर कर हम ऋषि के आशीर्वाद के भागी बनेंगे। यही आत्मनिरीक्षण भावना ऋषि-बोध-दिवस का वास्तविक सन्देश है।

# सनातन और नवीन का अद्भुत समन्वय

**सनातनमेनमाहुरुताद्य स्वात् पुनर्णवः।**
**अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः।। – अथर्व० १०/८/२३**
**ऋषिः कुत्सः।। देवता – आत्मा।। छन्दः अनुष्टुप्।।**

**वेद–स्वाध्याय :**

शब्दार्थ – एनम् = इस देव को सनातनम् = सनातन, अनादिकालीन आहुः = कहते हैं, उत = और तो भी यह अद्य = आज, प्रतिदिन पुनः नवः = फिर–फिर नया स्यात् = होता है। देखो, अन्यः = एक अन्यस्य = दूसरे के रूपयोः = रूपों में, समान रूपों में ही अहोरात्रे = ये दिन–रात प्रजायेते = सदा पैदा होते रहते हैं।

विनय – विरले ही मनुष्य होते हैं जिन्हें कि आतमा, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म आदि की चर्चा रोज–रोज रुचती है, आनन्ददायी लगती है। हम साधारण लोगों को तो यह चर्चा पुरानी, जीर्ण, घिसी हुई, बासी और नीरस ही लगती है। जब हमें रोज–रोज समाज–मन्दिर की वेदकथा में जाने को, नैत्यिक प्रार्थना में उपस्थित होने को या दैनिक भजन–कीर्तिन में सम्मिलित होने को कहा जाता है तो हम प्रायः कहते हैं हम वहाँ जाकर क्या करेंगे? वहाँ तो रोज वही एकरस मामला चलता है, वहाँ कुछ नई बात तो मिलती नहीं। वास्तव में यह सच है क जिसमें कुछ नई चीज न मिलती हो, कुछ नीवनता न होती हो, वह वस्तु हमें कभी रसदायी नहीं हो सकती, आनन्ददायी नहीं हो सकती। जिन लोगों को प्रतिदिन ईश्वर–भजन करने में आनन्द आता है उन्हें इसलिए आनन्द आता है, क्योंकि सचमुच उन भक्तों के लिए वे प्रभु नित्य नये होते रहते हैं, नित्य नया जीवन देते हुए मिलते हैं, हमें ईश्वर का ध्यान करने में तभी रुचि होती है जब उसका ध्यान हमें नित्य नया आनन्द देता है। सच्चा जप करनेवाला वही है जिसे प्रभु का महापुराना नाम लेते हुए ओर उसे बार–बार लेते हुए भी प्रत्येक बार में प्रभुनाम के उच्चारण से नया–नया उत्साह, नया–नया ज्ञान, नई–नई भक्ति की उमंग ओर नया–नया प्रेम का रस मिलता है। अरे मेरे भाईयो! ये दिन–रात कितने पुराने हैं, उन्हें तुम भी अपने जन्मदिन से लेकर आज तक बिलकुल उसी एक रूप में रोज–रोज आते हुए रेख रहे हो, फिर भी ये तुम्हें पुराने, घिसे, हुए, नीरस क्यों नहीं लगते? इसका कारण यह है कि दिन–रातों में तुम जीवन पाते रहे हो, प्रतिदिन विकसित होते गये हो। इसी तरह जब तुम उस परमेश्वर में रहने लगोगे, उसमें प्रतिदिन आध्यात्मिक विकास पाने लगोगे तो तुम भी कह उठोगे– वह अनादिकालीन पुराना सनातन प्रभु मेरे लिए प्रतिदिन फिर–फिर नया होता है, प्रत्येक आज में, प्रत्येक नये दिन में फिर–फिर नया होता है।

**–साभार–वैदिक विनय**

* * * * *

# हम सर्वत्र मातृभूमि के यश की रक्षा करें

**ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम।**
**ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते।। – अथर्व० १२/१/५६**
**ऋषिः अथर्वा।। देवता – भूमिः।। छन्दः अनुष्टुप्।।**

**वेद–स्वाध्याय :**

शब्दार्थ – अधि भूम्याम = इस भूमि पर ये ग्रामाः = जो ग्राम हैं यद् अरण्यम् = जो जंगल हैं याः सभाः – जो सभा हैं ये संग्रामाः = जो लड़ाईयाँ हैं समितयः = ओर जो समितियाँ होती हैं, तेषु = उन सबमें हम, हे भूमिमातः! ते = ते लिए चारु = उत्तम ही वाणी वदेम = बोलें।

विनय – हे भूमिमातः ! हम प्रत्येक स्थान में, प्रत्येक समय में, प्रत्येक विषय में तेरे लिए चारु ही भाषण करें, तेरे लिए उत्तम वाणी ही बोलें। सदा ऐसी बात बोलें जोकि तेरे यश को बढ़ानेवाली हों, तेरे लिए हितकर हों, तेरी उन्नति करने वाली हों। हम तेरे ग्रामों–नगरों में रहें तो हमारे अन्दर परस्पर प्रेमपूर्वक तेरी ही चर्चाएँ चलें, तेरे गौरवपूर्ण भूत की कथाएँ कही जाएँ और तेरे उज्ज्वल भविषय की बातें हों। हम तेरे जंगल में हों तो वहाँ अकेले भी हम तेरे स्तुति–गीत गाएं, तेरे प्रेम की गीतियाँ गाते हुए आनन्द पाएँ। यदि तेरी सभाओं में जाएँ तो वहाँ तेरे पक्ष में भाषण करें, तेरे उन्नतिकारक प्रस्तावों पर हमारे प्रभावशाली वक्तव्य हों और यदि संग्रामों में खड़े हों तो वहाँ उच्चस्वर से तेरे ही नारे लगाएँ, अपने सैनिकों का उत्साह बढ़ाते हुए तेरे जयघोषों से आकाश को गुँजा देवें और जब तेरी समितियों में बैठे हों तो खूब सोच–समझकर पूरी तरह गम्भीर विचार करके ही मुख से शब्द निकालें, जिससे कभी अनजाने में भी हमारी वाणी द्वारा तुम्हारा द्रोह न हो सके। हे भूमिमातः! हमारी वाणी सदा तुम्हारे लिए उत्तम बोलनेवाली हों, सदा तुम्हारी सेवा के लिए समर्पित हों।

**–साभार–वैदिक विनय**

* * * * *

## जन्म मरण का चक्र ये

वर्ज–धन्य है तुझको....

जन्म मरण का चक्र ये, सदियों से चलता आ रहा।
कोई यहां से जा रहा, कोई वहां से आ रहा ।।टेक।।
सृष्टि की आदि काल से, आवगमन ये चल रहा।
चले जहां से दुःख है, आए खुशी मना रहा ।।१।।
रोता आया जहान में, हँसते ही जाना धर्म है।
जाना है तुझको एक दिन, उसके लिए क्या कर रहा।।२।।
चाहे राजा या रंक हो, योगी यति या संत हो।
जिसने भी जन्म है लिया, उन सबको काल खा रहा ।।३।।
मृत्यु को देख देख कर, ज्ञानी लेते है प्रेरणा।
रोते कलपते शेष जन, ऐसा ही चलता आ रहा ।।४।।
सुख की है जो कामना, धर्म को धर ले भाग ना।
ओ३म् का जाप कर सदा, मोक्ष को पथ ये जारहा।।५।।

**– आचार्य धर्मधर**

# त्याग से मुक्ति

– स्वामी वेदानन्द तीर्थ

व्याख्या

**यद्देवा देवान हुविषायजन्तामतर्यान्मनसा मर्त्येन।**
**मदेम तत्र परमे व्यो मन्पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य।। –अथर्व. ७।५।३**

यज्ञ शब्द यज् धातु से बनता है। यज् धातु के अर्थ पाणिनि महर्षि के बनाये धातुपाठ में देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान–ये तीन लिखे हैं।

देवपूजा का अर्थ है– देवों की पूजा, सत्कार, अन्न, वस्त्र, स्थान, आसन, नमस्कार, यथायोग्य उपयोग आदि विविध प्रकार की सेवा–शुश्रूषा से पूजा हो सकती है।

सङ्गतिकरण का भाव है– सङ्गति करना, मिलना–मिलाना, पदार्थों की एक गति, एक अवस्था, एकरूप करना।

दान का अर्थ है– डालना, अपना अधिकार छोड़कर दूसरे का अधिकार करा देना।

अब इन तीनों अर्थों पर ध्यान दीजिए, तीनों का मूलभाव एक है–त्याग, छोड़ना। जब देवपूजा करनी होती है, विद्वान् महात्मा का अन्न, जल, वस्त्र आदि से सत्कार करना होता है, उस विद्वान् देव के निमित्त अन्न–वस्त्रादि पर से अपना अधिकार हटाकर उसका अधिकार करे देना होता है। जब सङ्गतिकरण होता है, दो या अधिक द्रव्य मिलते हैं, तो कुछ रूपान्तर अवश्य होता है। ओषजन तथा आर्द्रजन के सङ्गतिकरण से जल–स्थूल जल –आविर्भूत होता है, दोनों ने अपने बाह्य रूपों का त्याग किया है। इसी प्रकार एक से अधिक व्यक्ति मिलकर जब समाज का सङ्गठन करते हैं।

छान्दोग्योपनिषद् में कहा है–

**पुरुषो वा यज्ञः। (३।१६।१) मान–जीवन यज्ञ है।**

अर्थात् मनुषय जीवन की सफलता, पुरुष का पुरुषत्व यज्ञ में, त्याग में है। इसी कारण वैदिक अग्निहोत्र की प्रत्येक आहुति के पश्चात् इदन्न मम कहना पड़ता है। यह त्याग की भावना का अभ्यास है।

मुक्ति का स्वरूप बताते हुए वेद ने बताया–

**यत्रानुकामं चरणम् – ऋ. ९।११३।९**

जहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक, अपनी इच्छानुसार विचरण हो।

कोई व्यक्ति जब अपने–आपको परतन्त्र देखता है, दूसरे के शासन में देखता है, तब व्याकुल होकर उससे छूटने का उपाय करता है। उस अवस्था में उसे अपना साधारण कार्यक्रम छोड़ना पड़ता है। यदि वह पूर्ववत् ही चलता रहे, तो उसके छुटकारे की कोई सम्भावना नहीं होत सकती। इसी भाँति जब कोई देश या जाति परतन्त्रतापाश में फँस जाती है, तब उससे छुटकारा पाने के लिए उस देश के लोग प्राणत्याग करने तक को तैयार हो जाते हैं। इससे दो बातें सिद्ध होती हैं। एक यह कि परतन्त्रता दुःख है, तभी उससे छूटने की इच्छा होती है। धर्मशास्त्रकार मनुजी ने कहा है।

सर्व परवशं दुःखम्। सभी प्रकार की पराधीनता दुःख है।

दूसरी बात यह है कि त्याग के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती, छुटकारा नहीं मिल सकता।

अब उस आत्मा की दशा का विचार करो, जो कर्मपाश में बँधा, जन्म–मरण के चक्कर में पड़ा धक्के खा

रहा है। वह स्वच्छन्द नहीं है, इस वर्त्तमान दशा में उसको अनुकामचरण प्राप्त नहीं है। इसकी प्राप्ति के लिए उसे कुछ त्याग करना होगा। इसके लिए स्व और पर, अपने और पराये का विवेक करना होगा, स्वजातीय और पर जातीय की पहचान करनी होगी। इस स्व पर-विवेक को शास्त्र में स्वाध्याय कहते हैं। स्वाध्याय का फल योगशास्त्र में लिखा है-

**स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः।२।४४**

**स्वाध्याय का फल अभीष्ट का मेल है।**

इस स्व-पर-विवेक से हमें ज्ञात हुआ कि अहं-मम की वासना सबसे बड़ा फन्दा है, जिसमें हम बँधे हैं। इस ज्ञान के होते ही साधक अहंता-ममता-त्याग का अभ्यास करता है। इसका नाम अपरिग्रह है और अपरिग्रह का फल है-

**अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोंधः। - यो०२।३८**

अपरिग्रह=ममता के अभाव=अभिमानाभाव की दृढ़ता से जन्म के हेतु का ज्ञान होता है। मन का विलय होने से आत्मा छूट सकता है, अतः मन का त्याग-मन का यज्ञ करना चाहिए, तब मुक्ति मिलेगी। इसी तत्त्व को लेकर वेद ने कहा-

**यद् देवा... मनसा मर्त्येन।**

ज्ञानी लोग इस मारक मन को मारने का यत्न करते हैं। उनके त्याग का आरम्भ मन के त्याग से होता है। वे इस यज्ञ में मन को हवि बनाते हैं और फिर यम के शब्दों में कह उठते हैं-

**अनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नियत्मय्। - कठो०**

अनित्य द्रव्यों के द्वारा मैंने निम्य को प्राप्त कर लिया है।

कितना उत्तम व्यापार है। अनित्य, विनाशी, क्षणभङ्गुर पदार्थ देकर निम्य, अविनाशी और शाश्वत पदार्थ मिलता है। इन विनाशी पदार्थों को तो वैसे भी चले जाना था, किन्तु अब कितनी अच्छी बात हो गई कि विनाशी यों ही नहीं चले गये। हमने सोचा, विचार कर उनका समर्पण किया ओर हमें अविनाशी पदार्थ मिल गया, तभी तोहम आनन्द में विभोर हो रहे हैं और कह रहे हैं-

**मदेम तत्र परमे व्योमन्।**

उस परम व्यापक, जीवनाधार भगवान् में आनन्द मनाएँ, और हम उसे लुक-छिपकर नहीं देखें वरन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य।

**उसे सूर्य के उदय में, प्रचण्ड प्रकाश में देखें।**

अर्थात् हम सदा उसके दर्शन करते रहें। भगवद्दर्शन, ज्ञानालोक में प्रभु सङ्गति ही भक्ति है। उसका मेल होने से सब बन्धन कट जाते हैं। जैसाकि उपनिषद् में कहा है-

**भिद्यते हृदयग्रन्थिनिश्चद्यन्ते सर्वसंशयाः।**
**क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।**
**- मुन्डको० २।२।८**

उस सर्वोत्कृष्ट भगवान् के दर्शन होने पर हृदय की गाँठ खुल जाती है, सब संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, कर्म शिथिल पड़ जाते हैं।

यही मुक्ति की दशा है और यह यज्ञ=त्याग से प्राप्त होती है।

(बलिदान दिवस २३ दिसम्बर के उपलक्ष्य में)

# भारत और भारतीयता के लिए स्वामी श्रद्धानन्द के राष्ट्रवादी प्रयास

सर्वत्यागी, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के समुद्धारक, सबको समान शिक्षा के अधिकार के समर्थक, अछूतोद्धारक, राष्ट्रभक्त संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती का संन्यास धारण करने से पूर्व मुंशीराम नाम था। वे अपने महान् और उदारतापूर्ण कार्यों से महात्मा मुंशीराम के नाम से प्रसिद्ध हुए। मुंशीराम के साथ महात्मा शब्द का सम्बन्ध इतना गहरा जुड़ चुका था कि प्रारम्भ में जब श्री गाँधी के लिए कोई महात्मा पद का सम्बोधन करता था तो गाँधीजी चौंक पड़ते थे। उन्होंने लिखा है कि जब कोई मुझे महात्मा जी कहकर पुकारता है तो मुझे सन्देह होता है कि कहीं यह महात्मा मुंशीराम को तो नहीं पुकार रहा है। मुंशीरामजी का जन्म पंजाब प्रान्त के तलवन गाँव में सन् १८५६ ईस्वी में हुआ। उनके पिता लाला लनानकचन्द उत्तर प्रदेश में पुलिस अधिकारी के पद पर कार्यरत थे तो वहाँ स्वामी दयानन्द सरस्वती पधारे। स्वामीजी के उपदेश सुनकर स्वयं प्रभावित हुए लाला नानकचन्द ने अपने पुत्र मुंशीराम को भी स्वामीजी के उपदेश सुनने की प्रेरणा दी। स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेश सुनकर सांसारिक व्यसनों में लिप्त रहने वाले मुंशीराम की जीवनधारा ही बदल गई और वे ईश्वरविश्वासी, धार्मिक, व्यसनों से विरक्त एक राष्ट्रभक्त व्यक्ति बन गये। वे वकालत का व्यवसाय करते थे, किन्तु व्यक्तिगत जीवन में वे वेद आदि आर्ष-ग्रन्थों का स्वाध्याय करते थे। उनको अनुभव हुआ कि अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली से पढ़कर भारत का युवावर्ग भारतीय संस्कृति-सभ्यता से विमुख, राष्ट्रप्रेम से विहीन और पाश्चात्य सभ्यता की ओर आकर्षित होता जा रहा है कि युवावर्ग को इन सब कमियों से परम्परागत भारतीय आर्ष गुरुकुल शिक्षाप्रणाली ही बचा सकती है। तब उन्होंने गुरुकुल की स्थापना करने का संकल्प लिया। उससे शिक्षा के क्षेत्र में नयी क्रान्ति का आरम्भ हुआ। उनके द्वारा विचारित शिक्षा-प्रणाली वैदिक और अर्वाचीन शिक्षा का समन्वित रूप थी। महर्षि दयानन्द के पश्चात् शिक्षा-विषयक यह दृष्टिकोण स्वामी श्रद्धानन्द की देन था।

पारिवारिक दायित्वों से मुक्त होने के बाद महात्मा मुंशीराम जी ने अपना सर्वस्व अर्थात् जालन्धर स्थित विशाल भवन, प्रेस, भूमि आदि सब कुछ आर्यसमाज को दान कर दिया और पर्याप्त धन-वसंग्रह करके हरिद्वार के पास काँगड़ी नामक गाँव में, गंगा तट पर सन् १९०२ में पहला गुरुकुल खोला, जिसका नाम गुरुकुल काँगड़ी प्रसिद्ध हुआ। मुंशीराम जी ने अपने दो बेटे भी उसी में प्रविष्ट करा के आर्यसमाज को समर्पित कर दिये। यह जनता के सामने मोहत्याग एवं सर्वमेध यज्ञ का अनुपम उदाहरण था। उनके इस अनुकरणीय उदाहरण को देखकर अन्य अनेक छात्र भी गुरुकुल में प्रविष्ट हो गये और वहाँ से भारतीय संस्कृति-सभ्यता, राष्ट्रभक्ति से अनुप्राणित शिक्षितजनों का एक समुदाय निर्मित होने लगा। राषट्रपप्रेम की शिक्षा-दीक्षा देने के कारण ही महात्मा गाँधी ने गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना के उपरान्त महात्मा मुंशीराम ने दिल्ली में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ और हरियाणा के कुरुक्षेत्र नगर में गुरुकुल कुरुक्षेत्र गुरुकुल सूपा (गुजरात) जैसे गुरुकुलों की स्थापना की। भारतीय साहित्य, संस्कृति-सभ्यता के प्रचार-प्रसार और स्वतन्त्रता-आन्दोलन में इन गुरुकुलों का योगदान स्वर्ण अक्षरों में उल्लेखनीय है। ये भारतीय संस्कृति-सभ्यता के संरक्षक रहे हैं। गुरुकुलों ने राष्ट्रीय भावना को सुरक्षित रखा है और राष्ट्रीप्रेम की भावना में अभिवृद्धि की है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गुरुकुल राष्ट्रीयता के प्रहरी हैं।

गुरुकुलीय शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी जी के ये सभी कदम क्रान्तिकारी थे और राष्ट्र के उत्थान के लिए वरदान थे। उनकी अनन्य विशेषता यह थी कि ये महर्षि दयानन्द वर्णित शिक्षा-पद्धति के अनुसार संचालित थे

और इनमें मानवमात्र को समान रूप से शिक्षा प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध थे। जाति-पाँति, ऊँच-नीच का कोई भेदभाव नहीं था, सबका समान खान-पान, समान रहन-सहन था। सबको निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा भारतीय संस्कृति-सभ्यता और राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत थी। इन गुरुकुलों की स्थापना के बाद भारत में शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात हुआ, रूढ़ियाँ छिन्न-भिन्न हो गईं। गुरुकुलों का अनुकरण करते हुए सारे देश में सबको शिक्षा देने की लहर चल पड़ी। ारत के स्वतन्त्र होने के उपरान्त आर्यसमाज की ये शिक्षा सम्बन्धी नीतियाँ अन्ततः भारत सरकार की शिक्षा-नीतियाँ ही बन गईं। आज जो भारत में सर्वत्र और सबको समान शिक्षा के अवसर उपलब्ध हैं, इनकी नींव महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्दजी और आर्यसमाज ने रखी थी। शिक्षाजगत् में विदेशी शिक्षा-पद्धति और शैक्षिक रूढ़िवाद के विरुद्ध क्रान्ति का सूत्रपात करना स्वामी श्रद्धानन्द की राष्ट्रीयता की भावना की संरक्षा और अभिवृद्धि के लिए अभूतपूर्व देन थी, क्योंकि मैकाले द्वारा प्रवर्तित शिक्षा-प्रणाली ने भारत में राष्ट्रवाद की भावना का ह्रास कर दिया था।

स्वतन्त्रता-आन्दोलन के प्रारम्भ होने पर स्वामी श्रद्धानन्द राजनीति के रणक्षेत्र में एक समर्पित और निर्भीक राजनेता के रूप में प्रस्तुत हुए। उन्होंने निडरता की प्रेरणा देनेवाले अपने गुरु महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों से निर्भीकता की दीक्षा प्राप्त की थी। स्वामीजी ने ऐसे-ऐसे उदाहरण अपने आचरण से उपस्थित किये जिन्हें स्वतन्त्रता-आन्दोलन के इतिहास में सदा याद किया जाता है। महात्मा गाँधी ने जब स्वतन्त्रता के लिए सत्याग्रह की घोषणा की तो राष्ट्रप्रेम से प्रेरित होकर स्वामीजी भी उसमें कूद पड़े और आन्दोलनकारियों का नेतृत्व किया। उनकी साहसपूर्ण यह घटना प्रसिद्ध है कि एक दिन दिल्ली के चाँदनी चौक बाजार में स्वामी जी के नेतृत्व में सत्याग्रहियों का जुलूस निकल रहा था। घंटाघर पहुँचे तो देखा कि पुलिस संगीन ताने पंक्तिबद्ध खड़ी थी ओर आगे जाने के लिए रास्ता रोका हुआ था। स्वमी श्रद्धानन्द आगे थे, जब वे पुलिस की पंक्ति के पास पहुँचे तो एक साथ कई संगीन उनके सीने पर आ टिकीं। स्वामीजी ने अपने सीने के बटन खोलकर पुलिस को ललकारा-लो, चलाओ गोरा पुलिस कुछ समय के लिए स्तब्ध रह गई। तभी एक गोरा पुलिस अधिकारी वहाँ दौड़ा आया और उसने संगीनें हटवाकर स्वामीजी के जुलूस के लिए रास्ता खुलवा दिया। सत्याग्रह में स्वामी जी के सम्मिलित होने के बाद सत्याग्रह को नया प्रोत्साहन मिला, श्री गाँधी को एक दृढ़ सम्बल मिल गया। स्वामीजी ऐसे नेता थे जो स्वतन्त्रता-सत्याग्रह करते हुए स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपना बलिदान पहले देने में विश्वास करते थे। महात्मा गाँधी स्वामीजी के इस गुण ओर आत्मविश्वास से बहुत प्रभावित थे। वे स्वामीजी को राष्ट्रवादी नेता मानते थे। स्वामीजी से प्रेरित होकर उनके अनेक शिष्यों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया ओर कुछ का तो बलिदान भी जेल में दी गई यातनाओं के कारण हुआ था। स्वामीजी से प्रेरित होकर उसने अपना पूरा जीवन स्वतन्त्रता पाने के लिए अर्पित कर दिया था। जेलों की यातनाओं ने उसके युवा शरीर को जर्जर कर दिया था।

सन् १९१९ में काँग्रेस समिति ने निश्चय किया कि इस वर्ष का अधिवेशन अमृतसर में आयोजित किया जाये। जलियाँवाला बाग की बर्बर घटना केबाद अँग्रेज सरकार से पंजाब के नेता और जनता दोनों भयभीत थे। कोई भी काँग्रेस का अधिवेशन कराने की जिम्मेदारी लेने को उद्यत नहीं था, तब पं. मोतीलाल नेहरू के अनुरोध पर स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अधिवेशन कराने का दायित्व स्वीकार किया और अधिवेशन को सफल बनाकर पंजाब की जनता के मन से अंग्रेजी सरकार का भय दूर किया तथा नया उत्साह और आत्मविश्वास उत्पन्न किया। इस प्रकार स्वामीजी स्वतन्त्रता-आन्दोलन के साहसी और निर्भीक नेता थे।

कुछ घटनाएँ बताती हैं कि स्वामी श्रद्धानन्द का प्रभाव सामान्य जनता में श्री गाँधी से बढ़कर था। राष्ट्रीय सद्भाव का निर्माण करने का जैसा अभूतपूर्व निश्छल उदाहरण स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती का मिलता है वैसा

उदाहरण भारत में अन्य किसी नेता का नहीं मिलता और मिलने की भविष्य में भी संभावना नहीं दिखाई देती। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के दौरान, दिल्ली के गोलीकांड के विरोध में ४ अप्रैल, १९१९ को जामा मस्जिद में नमाज के बाद मुसलमानों की एक विशाल सभा हुई। उसमें माँग उठी कि भाषण के लिए स्वामी श्रद्धानन्द को भी बुलाया जाये। तभी कुछ मुसलमान युवक स्वामीजी को तांगे पर बैठकार ले आये और उन्होंने जमा मस्जिद की मिम्बर से वेदमन्त्र के उच्चारण के साथ अपना भाषण दिया। इसी प्रकार छह अप्रैल को स्वामी जी ने दिल्ली की फतेहपुरी मस्जिद में भाषण दिया। मस्जिदों में व्यक्तव्य देने का ऐसा दुर्लभ अवसर प्राप्त करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द एकमात्र हिन्दू आर्यनेता हैं। इस प्रकार स्वामीजी से हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही आजादी के आन्दोलन में प्रेरणा तथा मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से यह दुभाग्यपूर्ण घटना थी कि २३ दिसम्बर, १९२६ को उनका अब्दुल रशीद नामक एक मुस्लिम मतान्ध व्यक्ति के हाथों बलिदान हो गया और राष्ट्र की स्वतन्त्रता में समर्पित एक महापुरुष हमारे बीच से छीन लिया गया। जिस कट्टरवाद की भावना ने स्वामीजी के प्राण अपहरण किये, स्वामीजी उसको अनुभव कर चुके थे और अपनी भावी योजनाओं से उसे शक्तिहीन करना चाहते थे। भारत की राष्ट्रीय अभिस्मता पर मंडराते कट्टरवाद के भावी खतरे को अनुभव करते हुए और हिन्दुत्व को सम्बल प्रदान करने के विचार से स्वामी श्रद्धानन्द ने शुद्धि आन्दोलन का कार्यक्रम आरम्भ किया था जिससे कट्टरवाद में फँसे लोगों की घर-वापसी हो सके। यह कार्यक्रम पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। पश्चिम उत्तर प्रदेश में लाखों मलकान राजपूतों और अन्य लोगों ने इस्लाम को त्यागकर पुनः हिन्दू-समाज में प्रवेश लिया। यह भारत के प्राचीन राष्ट्रीय स्वरूप को लौटाने का एक दूरदृष्टिपूर्ण साहसी अभियान था। उससे विक्षुब्ध हुए इस्लामी कट्टरवाद ने स्वामी जी की हत्या कर डाली। शुद्धि-अभियान से इस्लामिक कट्टरवाद का रुष्ट और बाधक होना फिर भी स्वाभाविक कहा जा सकता है, किन्तु इसमें श्री गाँधी का बाधक बनना विस्मयजनक और दुःखद रहा। (स्वामी श्रद्धानन्द) ने गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार में प्रथम बार महात्म की माननीय उपाधि से विभूषित किया था, जो कि श्री गाँधी की जीवनभर की प्रतिष्ठाबोधक बन गई थी, उस दिन श्री गाँधी ने जिस स्वामी श्रद्धानन्द से अपने बड़े भाई के स्थानापन्न रहकर मार्गदर्शन करते रहने की प्रार्थना की थी, उन्हीं श्री गाँधी ने स्वामी श्रद्धानन्द के हत्यारे को भाई कहकर सम्मान दिया। उसके द्वारा की गई हत्या को समाज की जिम्मेदारी बताकर हत्यारे का बचाव करने की कोशिश की। आश्चर्य है, राजनीति स्वयं को सन्त कहने वाले व्यक्ति को भी कितना संकीर्ण मानसिकता का बना देता है!! बड़े भाई के स्थान पर प्रतिष्ठित व्यक्ति की हत्या पर भी श्री गाँधी दुःख न मनाने की बात कहते रहे!! स्वामी श्रद्धानन्द ने शुद्धि के द्वारा भारतीय समाज को अपने भविष्य को सुरक्षित रखने का एक विचार, एक मार्ग प्रदर्शित किया है, उस पर आचरण तो भारतीयों को करना होगा।

राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, सद्भाव, समता और मानवता की दृद्धि से स्वामी जी ने आर्यसमाज के अछूतोंद्धार, दलितोत्थान के कार्यक्रम को पूरी निष्ठा के साथ आगे बढ़ाया। जातिगत असमानता, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच का भेदभाव, मानवीय अधिकारों का हनन आदि व्यवहारों ने अतीत में हिन्दू-समाज और हिन्दू-राष्ट्र का विघटन एवं पतन किया है। इस विघटन एवं पतन को रोकने का एकमात्र उपाय है जातिगत भेदभाव को समाप्त करना। स्वामी जी ने इसके लिए संघर्ष किया और कथित अछूतों के साथ सहभोज रखे, उनको सार्वजनिक कुओं से पानी लने का अवसर प्रदान किया, मन्दिरों में प्रवेश दिलाया, उनको धार्मिक अधिकार प्रदान किये, यज्ञोपवीत देकर शिक्षा ग्रहण करने के अवसर प्रदान किये, गुरुकुलों में बिना किसी जातिगत भेदभाव के रहन-सहन, खान-पान का व्यवहार रखा। भारत को, भारतीय समाज को विघटन से बचाने के लिए यह महत्त्वपूर्ण उपाय है, जो स्वामी जी ने अपनाया। उस महान् संन्यासी के बलिदान-दिवस पर उनका कृतज्ञतापूर्ण स्मरण है!!

– डॉ. सुरेन्द्र कुमार

# वैदिक रेफरेंस लाइब्रेरी - एक वृहद योजना

**दिल्ली सभा के इस सृजनात्मक अभियान में प्रत्येक आर्य व्यक्ति, परिवार, संस्था ओर समाज वैदिक साहित्य को एकत्रित करने में पूरी शक्ति से करें सहयोग प्रदान**

किसी भी संस्था या संगठन के विचार, मान्यताएं और परंपराओं के प्राण उसके साहित्य-पुस्तकों में समाए होते हैं। वैदिक धर्म, संस्कृति और संस्कारों के उत्थान में आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती जी से लेकर पंडित लेखराम, स्वामी श्रद्धानंद, लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज, पंडित गुरूदत्त विद्यार्थी, स्वामी दर्शनानंद, स्वामी स्वतंत्रानंद, महात्मा नारायण स्वामी, पंडित तुलसीराम, ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, गंगाप्रसाद उपाध्याय, आर्यमुनि इत्यादि हमारे महापुरुषों ने वेदज्ञान की अविरल धारा के जन-जन तक पहुंचाने के लिए कठिन परिश्रम किया और अत्याधिक मात्रा में साहित्य सृजन कर पुस्तकों के रूप में उसे वितरित भी किया। इसी ज्ञान संपदा की बदौलत आज हम देश के कोने-कोने में और विश्व के 32 देशों तक विस्तार कर पाए हैं। इस क्रम को लगातार आगे बढ़ाने की प्रेरणा देते हुए पंडित लेखराम ने कहा था कि विचारशीलता और लेखन का कार्य आर्यसमाज की ओर से निरंतर चलते रहना चाहिए। जिसके परिणामस्वरूप आर्य समाज के सैकड़ों सुप्रसिद्ध संन्यासियों और विद्वानों ने वैदिक साहित्य कोष की निरंतर अभिवृद्धि की। किंतु आज हमारे महापुरुषों के द्वारा निर्मित कई पुस्तकें ऐसी हैं जो बहते समय के प्रवाह के साथ-साथ धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही हैं। बहुत सी पुस्तकों को किन्हीं कारणों से प्रकाशित नहीं किया जा रहा है और इस तरह बहुत-सी पुस्तकें जो अत्यंत उपयोगी थीं, उनका मिलना लगातार बहुत कठिन होता जा रहा है।

इन समस्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा ने कई वर्षों पूर्व वैदिक रेफरेंस लाइब्रेरी की योजना का शुभारंभ किया था और सभी आर्य समाजों एवं आर्य जनों से अनुरोध किया था कि आपके घर की अथवा आर्यसमाजों एवं आर्य शिक्षण संस्थाओं की लाइब्रेरी में कहीं पर भी दुर्लभ वैदिक सहित्य उपलब्ध हो तो कृपया उसे दिल्ली सभा द्वारा संचालित वैदिक रेफरेंस लाइब्रेरी में पहुंचाने की कृपा करें। बहुत-सी उपयोगी पुस्तकें पहुंचाई भी हैं, उन सभी महानुभावों का धन्यवाद। लेकिन सभा का यह कार्य अभी अधूरा है, सभा की यह वैदिक रैफरेंस लाइब्रेरी की योजना बड़ी व्यापक है, इसके पीछे भावना यही है कि-

1) आर्य समाज संपूर्ण वैदिक साहित्य एक स्थान पर पुस्तकों के रूप में हार्ड कापी और साफ्ट कापी दोनों फार्मट में उपलब्ध हो और यह सारी वैदिक ज्ञान संपदा आर्य समाज की वैबसाईट पर भी उपलब्ध हो।

2) जिसके परिणाम स्वरूप संपूर्ण विश्व में कहीं भी, कभी भी और कोई भी आर्य सज्जन जिस किसी भी पुस्तक का स्वाध्याय करना चाहिये अथवा किसी पुस्तक के रेफरेंस से कोई बात प्रमाणित करना चाहे तो वह तुरंत आर्य समाज की वैबसाइट पर जाकर ई- संस्कारण द्वारा कर सके।

3) इस तरह आर्य समाज का प्रचार प्रसादर भी तीव्रगति से संभव होगा, हमारे पूर्वजों ने जिस लोकोपकारी भावना से कठिन तप करके पुस्तकों की रचना की थी उसकी रक्षा होगी और हमारी अमूल्य तिनिध वैदिक ज्ञानधारा भी सुरक्षित होगी।

4) इसके साथ साथ आधुनिक तकनीक का उपयोग करके हम देश की युवा पीढ़ि को आर्य विचारधारा और वैदिक ज्ञानधारा से सरलता से जोड़ने मे सफल होंगे।

5) बंधुओ, आज समाज वीव्र गति से बदलाव की ओर बढ़ रहा है, इस परिवर्तन की धारा में हमें अपने

वैदिक विचार-मान्यताएं और परंपराओं को सहेजना भी है और उन्हें प्रसारित भी करना है। इसी भावना और कामना को साकार करने में वैदिक रेफरेंस लाइब्रेरी बहुत बड़ी भूमिका निभाएगी।

अतः इस विशेष अनुरोध पर गहराई से चिंतन करें, इसके महत्व को समझें और वैदिक साहित्य को वैदिक रैफरेंस लाइब्रेरी में अपना नाम, पता एवं सम्पर्क सूत्र लिखकर रजिस्टर्ड डाक/कोरियर द्वारा प्रबन्धक, वैदिक रैफरेंस लाईब्रेरी के नाम - दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, 15 हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजें।

**- विनय आर्य, महामंत्री**

* * * * *

# काव्यरुप में आर्य समाज के नियम

**कवि - सुरेश गीर सागर**

वैदिक हो तेरे विचार मानव, वैदिक हो तेरा आचरण रे।
गाए जा तू भजन वैदिक, किए जा तू वैदिक जागरण रे।।धृ।।

सब सत्य विद्याओं का मूल, है परमेश्वर स्मरण रहे।
विद्याओं से ही जाना जाता, सारा चराचर स्मरण रहे।
स्मरण रहे ईश्वर ने ही, बनाई है धरती और गकन रे।
वैदिक हो तेरे...।।१।।

सब सत्य विद्याओं का पुस्तक वेद ही धर्मग्रंथ है।
वेद का पढना-पढाना और सुनना-सुनाना ही धर्मपन्थ है।
ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद अपार ज्ञान धन रे।
वैदिक हो तेरे...।।२।।

वेद की बोले ऋचाएं सत्य को सदा सर्वदा धारण करें।
असत्य को छोडने का अभ्यास प्रयास मानव आमरण करें।
वैदिक राह पर चलकर करना अपना उन्नत जीवन रे।
वैदिक हो तेरे...।।३।।

धृतिः क्षमा दमः अस्तेय शौचम् हैं धर्म के गुणधर्म।
इंद्रियनिग्रह धी विद्या अक्रोध सत्यम् धर्म के गुणधर्म।
धर्मानुसार वर्तने मानव इन इस गुणों को कर धारण रे।
वैदिक हो तेरे...।।४।।

शारीकिर आत्मिक सामाजिक उन्नति का वेदों में उपदेश।
संसार का उपकार करना आर्य समाजिकयों को है परम आदेश।
कृण्वतों विश्वमार्यमं की उद्देश्य पूर्ति में रहना मानव मगन रे।
वैदिक हो तेरे...।।५।।

ढाई अक्षर प्रेम के पढनेवाला पण्डित कहलाया जाता है।
प्रेम ही है धर्म और धर्म प्रेम ही से निभाया जाता है।
सबसे प्रितिपूर्वक यथायोग्य धर्मानुसार रहे वर्तन रे।
वैदिक हो तेरे...।।६।।

विद्या या ज्ञान का अभाव अज्ञान या अविद्या कहलाए।
सर्वहितकारी सुविधा प्राप्त करने हेतु गुरु शरण में जाए।
अविद्या का नाश और सुविद्या की वृद्धि करते आर्य जन रे।
वैदिक हो तेरे...।।७।।

केवल अपनी ही उन्नति में संतुष्टि कहलाती है प्रकृति।
सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझना है संस्कृति।
हों सब जन उन्नत तो होगा हर समस्या का समाधान रे।
वैदिक हो तेरे...।।८।।

व्यक्तिगत हित हेतु निश्चय ही हर कोई स्वतंत्र रहे।
सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालन में परतंत्र रहे।
आर्य समाज के दस नियमों का पालन कर सागर आर्य बन रे।
वैदिक हो तेरे...।।९।।

**- इन्दिरा-श्याम**
केशवनगर, अंबाजोगाई रोड,
लातूर.
मो.: ९४२२६५५५५४

# वेदाङ्ग छन्दःशास्त्र, स्वरूप एवम् उपयोगिता

लेo–डॉo जयदत्त उप्रेती

स्वस्त्ययन, तल्ला थपलिया, अल्मोड़ा–263601 (उत्तराखण्ड)

(विद्यावयोवृद्ध श्रद्धेय आचार्य जी ने वैदिक वाङ्मय में छन्द की स्थिति, छन्द का वैदिक स्वरूप तथा वैदिक वाङ्मय की अर्थसम्पत्ति में उसकी उपयोगिता या प्रयोजन पर प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है। पयोगकाल में वक्तओं की वाणी से क्रमशः अभिव्यक्त होना ही छन्दोयुक्त मन्त्र की गति है, यही किसी मन्त्र का छन्द पर टिकना है तथा इसीलिए छन्द को पादस्थानी कहा जाता है। वैदिक प्रमाणों के आधार पर छन्द शब्द अधियज्ञ, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक प्रसङ्गों में अनेक अर्थ वाला है। विना छन्दज्ञान के कोई व्यक्ति वेदाधारित किसी भी कर्म को करने में समर्थ नहीं है। अतः प्रत्येक वैदिक पुरुष को छन्दज्ञान परमावश्यक है।–सम्पादक)

जिस प्रकार मनुष्य–शरीर में आँख, कान, मुख, नाक, हाथ, पैर आदि अङ्ग विविध प्रयोजनों को सम्पन्न करने के लिए विधाता ने बनाये हैं, उसी प्रकार ऋग्–यजुः–सामाथर्व–वेदरूपी पुरुष के सम्पूर्ण विषय–वस्तु और अर्थ को जानने और तदनुसार कर्म करने के लिए प्राचीन महर्षियों ने शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और कल्प नामक छह वेदाङ्ग–शास्त्रों की रचना की है। पूर्वाचार्यों ने एक रूपकालङ्कार से इन छह वेदाङ्ग–शास्त्रों की कल्पना इस प्रकार की है–

**शब्दशास्त्रं मुखं चक्षुषी ज्योतिषं,**
**श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ।**
**या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका,**
**पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः।।**

अर्थात् वेद का प्रधान अङ्ग व्याकरण शास्त्र मुख के समाज है, ज्योतिष शास्त्र नेत्र के समान, निरुक्त शास्त्र कान के समान, शिक्षा नामक वर्णोच्चारण–शास्त्र नासिका के समान, छन्दःशास्त्र दो पैरों के समान और कल्पशास्त्र दो हाथों के समान हैं।

इस लेख में वेद के पादाङ्ग तुल्य छन्दःशास्त्र के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत हैं। स्थूल दृष्टि से देखा जाय तो प्रश्न होता है कि चारों वेदों के समस्त मन्त्र अनेक प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं तो उन छन्दों को पैर की उपमा क्यों दी गई है? उत्तर है– जिस प्रकार मनुष्य आदि प्राणियों के शरीर में पैर जहाँ सारे शरीर के भार को थामे हुए रहते हैं और चलकर उसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक चलने और पहुँचाने का कार्य करते हैं, उसी प्रकार अक्षरपरिणामात्मक अथवा, मात्राक्षर–नियतात्मक वेदवाणी के आधारभूत गायत्री आदि छन्द भी प्रयोग काल में वक्ताओं की वाणियों में व्यक्त होते रहते हैं। वही स्वरछन्दोयुक्त मन्त्रों का चलना है। यही छन्दोयुक्त मन्त्रों का छन्द पर टिकना है। इसी कारण छन्दों को पादस्थानी उपमित किया गया है।

छन्दों का स्वरूप– सम्प्रति छन्दःशास्त्र का एकमात्र प्रामाणिक ग्रन्थ महर्षि पिङ्गलाचार्य–रचित छन्दःशास्त्र है। इस ग्रन्थ में दो प्रकार छन्दों के विवरण मिलते हैं। वे हैं–वैदिक छन्द और लौकिक छन्द। आरम्भ से चतुर्थ अध्याय के सातवें सूत्र तक वैदिक छन्दों के लक्षण–परिमाणों का वर्णन है। तदनन्तर आठवें अध्याय पर्यन्त साढ़े चार अध्यायों में लौकिक छन्दों का विवरण है। वैदिक छन्दों की कुल सूत्रसंख्या अध्याय–क्रमानुसार 15, 16, 66, 7 है जो कुल मिलकार 104 है। लौकिक छन्दों की संख्या बहुत अधिक है। और वहां

अध्यायक्रमानुसार सूत्रसंख्या 46, 44, 43, 36, 35 = 204 है। ये लौकिक छन्द सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त होते आये हैं, जो काव्य, महाकाव्य, खण्ड-काव्य, नाटक, चम्पूकाव्य में देखे जा सकते हैं।

वैदिक छन्दों के मुख्य भेद सात हैं, जो गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें गायत्री छन्द में 24 अक्षर, उष्णिक् में 28 अक्षर, अनुष्टप् में 32 अक्षर, बृहती में 36 अक्षर, पंक्ति में 40 अक्षर, त्रिष्टुप् में 44 अक्षर और जगती में 48 अक्षर होते हैं। गायत्री से उत्तरोत्तर चार-चार अक्षरों की क्रमिक वृद्धि होकर जगती छन्द 48 अक्षरों का हो जाता है। छन्दः शास्त्र के द्वितीय अध्याय में दैवी, आसुरी, आदि विभिन्न संख्यायुक्त अक्षरों के अनेक भेद दर्शाये हैं,

जो इस प्रकार हैं-

| | | |
|---|---|---|
| 1. दैवी गायत्री | 1 अक्षर छन्द। | |
| 2. आसुरी गायत्री | 15 अक्षर छन्द। | |
| 3. प्राजापत्या गायत्री | 8 अक्षर छन्द। | |
| 4. याजुषी गायत्री | 6 अक्षर छन्द। | |
| 5. साम्री गायत्री | 12 अक्षर छन्द। | |
| 6. आर्ची गायत्री | 18 अक्षर छन्द। | |
| 7. ब्राह्मी गायत्री | 36 अक्षर छन्द। | |
| 8. चतुष्पाद् गायत्री | 24 अक्षर छन्द। | प्रत्येक चरण में 6 अक्षर। |
| 9. आर्षी गायत्री | 24 अक्षर छन्द। | तीन चरण, प्रत्येक चरण में 8 अक्षर। |
| 10. निचृद् गायत्री | 23 अक्षर छन्द। | तीन चरण, क्रमशः 7, 8, 8 अक्षर। |
| 11. भुरिग् गायत्री | 25 अक्षर छन्द। | तीन चरण, क्रमशः 8,8,9 अक्षर। |
| 12. विराड् गायत्री | 22 अक्षर छन्द। | तीन चरण क्रमशः 6,8,8 अक्षर। |
| 13. स्वराड् गायत्री | 26 अक्षर छन्द। | तीन चरण क्रमशः 8, 8, 10 अक्षर। |
| 14. पादनिचृद् गायत्री | 21 अक्षर छन्द। | तीन चरण, प्रत्येक चरण में 7 अक्षर। |
| 15. अतिपादनिचृद् | 21 अक्षर छन्द। | तीन चरण, क्रमशः 6, 8, 7 अक्षर। |
| 16. वर्धमाना गायत्री | 21 अक्षर छन्द। | तीन चरण, क्रमशः 6, 7, 8 अक्षर। |
| 17. प्रतिष्ठा गायत्री | 24 अक्षर छन्द। | तीन चरण, क्रमशः 8, 7, 6 अक्षर। |
| 18. नागी गायत्री | 24 अक्षर छन्द। | तीन चरण, क्रमाशः 9, 9, 6 अक्षर। |
| 19. वाराही गायत्री | 24 अक्षर छन्द। | तीन चरण, क्रमशः 6, 9, 9 अक्षर। |
| 20. द्विपाद् गायत्री | 20 अक्षर छन्द। | दो चरण क्रमशः 12, 8 अक्षर। |

एकाक्षर गायत्री छन्द ओम् या ओं है। ओं खं ब्रह्म (यजुः0 40.17) इस वेदप्रमाण से ओम् यह शब्द आकाशवत् सबसे महान् ब्रह्म परमेश्वर परमात्मा का नाम है। यही दैवी गायत्री ब्राह्मी गायत्री भी कहलाती है। यही वेदमाता गायत्री भी है और चारों वेदों का एक देवता है, जिसका उच्चारण मन्त्र के प्रारम्भ में किया जाता है।

छन्दः शब्द प्रायः संवरणार्थक छदि या अपवारणार्थक छद (चुरादिः) धातु वाला माना जाता है, जैसे कि वस आच्दादनार्थक धातु है, उसी के समान। कहा जाता है कि एक ईश्वर जो सर्वत्र अभिव्याप्त है, उससे भिन्न के अपवारण और उसी सर्वव्यापक चेतन तत्त्व की अभिव्याप्ति का स्मरण इन दो धात्वर्थों से गृहीत होता है। इसी कारण छन्दः शब्द से व्याकरणशास्त्र को रचयिता महर्षि पाणिनि ने वेद अर्थ लोकर वेद के लिए अष्टाध्यायी में

अनेक बार बहुलं छन्दसि सूत्र की रचना की है। इससे स्पष्ट होता है कि छन्दस् शब्द वेद का पर्याय है। संस्कृत साहित्य में भी वेदों या वेद-मन्त्रों के लिए छन्दस् शब्द का प्रयोग हुआ है। जैसे कि महाकवि कालिदास का यह श्लोक प्रसिद्ध है-

**वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।**
**आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव।।**
**रघुवंश, १.११।।**

छन्द शब्द का एक अर्थ इच्छा या कामना भी है। किन्तु छन्दःशास्त्र में तो नियताक्षर-परिमाणात्मक शब्द या शब्दसमूह ही छन्द कहा जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, काँच से ढके हुए दीपक में वायु का प्रवेश न होने से वह अविरत रूप से जलता रहता है, स्वतन्त्रता से, उसी प्रकार इतरसम्बन्धापवारक होना ही आच्छा-दकत्व है, यही छन्दः शब्द का तात्त्विक अर्थ भी है।

यजुर्वेद वाजसनेयि माध्यन्दिनी संहिता के 14 वें अध्याय के 9, 10, 18, 19 वें मन्त्रों में तथा 15 वें अध्याय के चौथे एवं पांचवें मन्त्रों में क्रमशः मूर्धावयः प्रजापतिश्छन्दः, अनड्वा-न्वयः पंक्तिश्छन्दः, माच्छन्दः प्रमा च्छन्दः प्रतिमाच्छन्दः, पृथ्विवीच्छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दः, एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः, आच्छच्छन्दः प्रच्छ-च्छन्दः, इत्यादि मद्धत्रों में लगभग सवा सौ से अधिक वस्तुओं का नाम लेकर उन्हें छन्दः कहा गया है। ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद भाष्य में इन मन्त्रों में प्रयुक्त छन्दः शब्द का अर्थ स्वाधीन, स्वतन्त्र कर्म, बल आदि किया है। जब कि भाष्यकार उव्वट एवं महीधर ने कात्यायन श्रौतसूत्रानुसार इन मन्त्रों का अर्थ कर्मकाण्डपरक किया है। और छन्द शब्द से गायत्री छन्द का ग्राहण किया है। अस्तु, जो भी हो, इतना स्पष्ट है कि छन्दः शब्द न केवल गायत्री आदि अक्षर-परिमाणात्मक अर्थ का बोधक है, अपितु उससे इतर अन्यान्य अर्थों का भी द्योतक है। मा, प्रमा, प्रतिमा शब्दों में योगरूढ़ दृष्टि से मा अर्थ मान माप अर्थात् लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई, छोटा-बड़ा है, प्रमा का अर्थ प्रमाण यथार्थ ज्ञान है और प्रतिमा का अर्थ प्रतिकृति, प्रतिमान, प्रतिमिति, सादृश्य, सारूप्य है। तथापि वैदिक वाङ्मय में इन शब्दों का अन्य अर्थों में भी प्रयोग मिलता है। जैसे कि-

**मा छन्दः, तत्पृथिवी, अग्निर्देवता।।१।।**
**प्रमा छन्दः, तदन्तरिक्षम्, वातो देवता।।२।।**
**प्रतिमा छन्दः, तद्द्यौः, वसूर्यो देवता।।३।।**
**अस्त्रीवि छन्दः, तद्दिशः, सोमो देवता।।४।।**
**विराट् छन्दः, तद्वाक्, वरुणो देवता।।५।।**
**गायत्री छन्दः, तदजा, बृहस्पतिर्देवता।।६।।**
**त्रिष्टुप् छन्दः, तद्हिरण्यम, इन्द्रो देवता।।७।।**
**जगती छन्दः, तद्गौः, प्रजापतिर्देवता।।८।।**
**अनुष्टुप् छन्दः, तद्वायुः, मित्रो देवता ।।९।।**
**उष्णिहा छन्दः, तच्चक्षुः पूषा देवता।।१०।।**
**पंक्तिश्छन्दः, तत्कृषिः, पर्जन्यो देवता ।।११।।**
**बृहती छन्दः, तदश्वः, परमेष्ठी देवता।।१२।।**

अन्यत्र कहा गया है, पृथिवी गायत्री, अन्तरिक्षं त्रैष्टुभम्, द्यौर्जागती। अग्निर्गायत्रः, इन्द्रस्त्रैष्टुभः, विश्वे देवा जागताः। तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गायत्रम्, ओजो वा इन्द्रियं वीर्यं त्रिष्टुप्।

पशवो जागताः। ब्रह्म गायत्रम्, क्षत्रं त्रैष्टुभम्, विड् जागतम्। ब्राह्मणो गायत्रः, क्षत्रियस्त्रैष्टुभः वैश्यो जागतः। चतुर्विंशत्य-क्षरा वाग् गायत्री, चतुश्चत्वारिंशदक्षरा वाक् त्रैष्टुभी, अष्टचत्वारिंशदक्षरा वाग् जागती। ये कतिपय देवताओं और छन्दों के लक्षण्य उदाहरण हैं।

पुनः कहा गाय है-प्राणमात्रा छन्दः। क्योंकि यह सारा स्थावर-जङ्गम जगत् प्राणयुक्त होकर ही जीवित रहता है, निष्प्राण नहीं । इससे यह गतार्थ हुआ कि प्राण का नाम भी छन्दः है।

प्राणरूप छन्द यह एक गम्भीर विचार का विषय है। अपने वेदविज्ञान आलोक (वैदिक रश्मि थ्योरी भाग) भाग में आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक ने प्राण व छन्द तत्तदव विस्तार से विचार किया है। एक स्थान पर वे लिखते हैं कि जब ओम् रश्मि के पश्यन्ती रूप की तीव्रता बढ़ती है, उस समय प्रायः एकरसवत् मनस्तत्त्व में स्पन्दन होने लगते हैं। ये स्पन्दन ही भूरादि व्याहृति रश्मियों एवं प्राथमिक प्राणों का रूप होते हैं।....ईशदवर-तत्त्व काल-तत्व के द्वारा सम्पूर्ण महत्तत्त्व अहंकार वा मनस्तत्त्व के विशाल सागर, जो सर्वत्र एकरसवत् भरा रहता है, को सूक्ष्म पश्यन्ती ओम् वाक् रश्मियों से ऐसे स्पन्दित करता रहता है, मानो कोई शक्ति किसी महासागर में एक साथ तीव्र गति से भाँति-भाँति की सूक्ष्म-स्थूल लहरें उत्पन्न कर रही हो, उसी प्रकार ईश्वर अपनी शक्ति रूप कालवाची ओम् रश्मि के द्वारा मनस् वा अहंकार तत्तदव में प्राण व छन्द रश्मियों रूपी लहरें निरन्तर उत्पन्न करता रहता है। ये लहरें (रश्मियाँ) मुख्यतः चार प्रकार की होती हैं-

(अ) मूल छन्द रश्मियाँ

(ब) प्राथमिक प्राण रश्मियाँ

(स) मास व ऋतु रश्मियाँ

(द) अन्य छन्द व मरुद् रश्मियाँ

जिस प्रकार प्राणों को कहीं छन्द कहा गया है, उसी प्रकार किसी प्रसङ्ग में सूर्य की रश्मियों को भी छन्द कहा गया है। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है, छन्द ही वेदवाणियाँ हैं-छन्दासि वै ग्नाश्छन्दोभिर्हि स्वर्गं लोकं गच्छन्ति इन और ऊपर उल्लिखित उदाहरणों से स्पष्ट है कि छन्दः शब्द वैदिक वाङ्मय में अनेक अर्थों का वाचक है।

छन्दःशास्त्र की उपयोगिता-प्रयोजन-

ऋग्वेद में कहा गया है कि छन्दों के योग को जानना धीर पुरुषों में से विरले विद्वानों द्वारा ही सम्भव है, साधारण अल्पबुद्धि वाले के वश की बात नहीं है। वेदमन्त्रों के कर्मकाण्ड में प्रयोग-काल में मन्त्रों का ऋषि, देवता, छन्द, स्वर का ज्ञान होना आवश्यक माना गया है। जो इनका प्रयोग नहीं करता है, वह निन्दनीय माना गया है। जैसा कि कहा गया है-

**मन्त्राणां दैवंत छन्दो निरुक्तं ब्राह्मणान् ऋषीन्।**
**कृत्तद्धितादींश्चाज्ञात्वा यजन्तो यागकण्टकाः।।**
**अविदित्वा ऋषिच्छन्दोदैवतं योगमेव च।**
**योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः।।२।।**
**ऋषिच्छन्दोदैवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि।**
**अविदित्वा प्रयुञ्जानो मन्त्रकण्टक उच्यते।।३।। इति स्मर्यते।**

यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवत-ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाऽध्यापयति वा स्थाणुं वच्छति गर्तं वा पद्यते प्र वा मीयते पाणीयान् भवति। तस्मादेतानि मन्त्रे मन्त्रे विद्यात्। (छां0 ब्रा0 3.7.5) इति श्रूयते।

भगवान् कात्यायनोऽप्याह-छन्दांसि गाय-त्र्यादीनि एतान्विदित्वा योऽधीतेऽनुब्रूते, जपति, जुहोति, यजति, याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयामं भवति। अथान्तरा श्वगर्तं वा पद्यते स्थाणुं वच्र्छति प्रमीयते वा पापीयान् भवति। अथ विज्ञायैतानि योऽधीते तस्य वीर्यवत्-अथ योऽर्थवित्तस्य वीर्यवत्तरं भवति हुत्वेष्ट्वा तत्फलेन युज्यते। इति। इसलिए छन्दशास्त्र के बहुत प्रयोजन हैं। उसके विज्ञान के विना यज्ञवेद निर्वीर्य कालातीत (यातयाम) होता है। इसलिए कहना चाहिए कि यज्ञवेद अर्थात् यज्ञविषयक कर्मकाण्ड का उपकारक है छन्दः-शास्त्र।

और जिस प्रकार नाट्यवेद का उपकारक नृत्यवेद है, नृत्यवेद का उपकारक वाद्यवेद है, और वाद्यवेद का उपकारक गेयवेद है, तथा जिस प्रकार वाग्वेद (व्याकरण), अङ्कगणितविद्या एवं क्रियात्मक विद्यायें सब वेदों की उपकारक मानी जाती हैं, उसी प्रकार छन्दोवेद भी सर्वोपकारक है, क्योंकि जो गेयवेद या गानविद्या है, वह छन्दो-वेद (छन्दःशास्त्र) से भिन्न नहीं है, प्रत्युत उसी के अन्तर्गत है। क्योंकि छन्दविशेष ही तो गाये जाते हैं। किसी भी गीत में कोई न कोई छन्द होता ही है।

शिल्पं छन्दः यह त्रुतिवचन है। शिल्प-विद्या किसी फल की प्राप्ति के उद्देश्य से प्रवृत्त होती है। क्योंकि यह सारा ब्रह्माण्ड ही विश्वकर्मा की अद्भुत रचनाचातुरी शिल्पविद्या का साक्षात् निदर्शन है। लोक में भी सारे शिल्प उसी की रचनारूप शिल्प के अनुकरण पर मेधावी जनों एवं वैज्ञानिकों के द्वारा आविष्कृत होकर लोक में प्रचलित हो रहे हैं। इसलिए शिल्पविद्यात्मना भी छन्दःशास्त्र की सर्ववेदोपकारकता सिद्ध होती है। ऐतरेयारण्यक के अनुसार अभ्युदय (लौकिक सुखोन्नति) का हेतु भी छन्दोविज्ञान है। आध्यात्मिक प्रक्रियानुसार उष्णिक् छन्द शरीर के लोम हैं, गायत्री छन्द त्वचा है, त्रिष्टुप् मांस है, अनुष्टुप् नाड़ी है, जगती हड्डी है, पंक्ति मज्जा है, और प्राण बृहती है, वह छन्दों से छन्न (आवृत, आच्छादित) है। छन्दों से छन्न (व्याप्त) होने के कारण ये शरीरांग (अन्नमय, प्राणमय कोषादि) छन्दांसि कहे जाते हैं। इसलिए पुरुष के पास से सम्बन्ध को निवारण करने के कारण अपवारक होने से इन्हें छन्द कहना भी छन्दःशास्त्र के प्रयोजनों में अन्यतम है।

कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा वाले बतलाते हैं कि प्रजापति ने अग्निचयन किया तो वह छुरा और वज्र होकर रहा, उसे देखकर देवगण डर गये और उसके समीप नहीं आये। तब उन्होंने स्वयं को छन्दों से ढक लिया और तब समीप पहुँचे। यही छन्दों का छन्दस्त्व है। (तै0 सं0 5.6.6)

छान्दोग्योपनिषद् की श्रुति है-देवगण मृत्यु से डरने पर त्रयीविद्या (ऋग्वेदादि चारों वेद) में प्रविष्ट हो गये। उन्होंने छन्दोबद्ध मन्त्रों से अपने को आच्छादित कर लिया। इसलिए जो इन छन्दों से आच्छन्न किया, यही छन्दों का छन्दस्त्व है। (छा0 उप0 1.4.2) इसलिए अपमृत्यु का वारण करने के कारण छन्द कहा जाता है। यह भी छन्दःशास्त्र का एक प्रयोजन है।

वृद्धपराशरादि के कथन के अनुसार पुराकाल में सुरों (देवों) को असुरों ने पराजित कर दिया तो सुरों ने गायत्री आदि छन्दोन्वित मन्त्रों से अपने को आच्छन्न किया तो असुरों को जीत लिया। अतः शत्रुपरिभावकत्व ओर वियशालित्व प्राप्त करना भी छन्दःशास्त्र का एक प्रयोजन है।

सर्वानुक्रमणीसूत्र में महर्षि कात्यायन का कथन है, अर्थों के इच्छुक ऋषि लोग देवताओं के प्रति छन्दों के साथ बढ़े-अन्न, पुत्रादि से लोकर मोक्षपर्यन्त (धर्मार्थकाममोक्षनामक चारों पुरुषार्थों) फलों को अपने अधीन करने की इच्छा वाले मधुच्छन्दा से लेकर संवनन (ऋग्वेद के प्रथम सूक्त से लेकर दशम मण्डल के अन्तिम सूक्त

के) ऋषि पर्यन्त ऋषियों ने सूक्तोक्तहविर्भाग् वाले देवताओं को गायत्री आदि छन्दोयुक्त मन्त्रों से स्तुति द्वारा प्राप्त किया, यह जान कर कि अर्थ की प्राप्ति का यही उपाय है। इसलिए अन्न, पुत्रादि से लेकर मोक्षपर्यन्त फलों की प्राप्ति का साधन होना भी छन्दःशास्त्र के अनेक प्रयोजनों में से एक प्रयोजन है। षड्गुरुशिष्य ने भी कहा है–

**ऋषिनामार्षगोत्रज्ञः ऋषेः संस्थानतामियात्।**
**एकैकस्य ऋषेर्ज्ञानात् सहस्त्राब्दा स्थितिर्भवेत्।।**
**छन्सां चैव सालोक्यं छन्दोज्ञानादवाप्नुयात्।**
**तस्यास्तस्या देवतायास्तद्भावं प्रतिपद्यते।।**

गायत्री आदि वैदिक छन्दों का सारूप्य या प्रतीक यज्ञ में विभिन्न जागतिक वस्तुओं के साथ दर्शाया जाता है जिससे ज्ञात होता है कि ये छन्द न केवल वेदमन्त्रों के साथ सम्बद्ध होते हैं अपितु संसारगत विभिन्न वस्तुओं के साथ इनका सम्बन्ध हुआ करता है। जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण 15.4 में कहा गया है, जो सूर्य है वह धाता भी है और वषट्कार भी है, जो द्यौ है वह अनुमति भी है और गायत्री भी है, जो उषा है वह राका भी है और त्रिष्टुप् भी है, जो गौ है वह सिनीवाली भी है और जगती भी है, जो पृथिवी है वह कुहू भी है अनुष्टुब् भी। यही बात मैत्रायणी संहिता के राजसूयब्राह्मण में भी कही गई है। यहां विशेष ज्ञातव्य यह है कि जो पूर्वा पौर्णमासी है, वह अनुमति कही जाती है और जो उत्तरा है, वह राका। इसी प्रकार पूर्वा अमावास्या सिनीवाली और उत्तरा कुहू कही जाती है। यह सब छन्दोज्ञान के विना नहीं जाना जाता । इसलिए छन्दःशास्त्र की सर्वत्र वैदिक विषयों में उपयोगिता सिद्ध है।

**– वेदवाणी से साभार**

* * * * *

**हिमालय से एक नदी का उद्‌गम हुआ और उसका जल पहाड़ियों से नीचे उतरता हुआ मैदान में आया। एक व्यक्ति इस प्रक्रिया का बड़ी गंभीरता से अध्ययन कर रहा था। जल बढ़ता रहा, उसमें अनेक जल–नद आकर मिले। उन्होंने भी नदी का रूप ले लिया। नदी बहती चली गई और अंत में सागर में सामाहित हो गई। देखने वाले व्यक्ति नेइस मंजिल को जल की मूर्खता माना। हिमालय के उच्च शिखर को छोड़कर अनेक कष्ट–कठिनाइयाँ उठाकर खारे जल में मिलना मूर्खता नहीं तो और क्या है? नदी ने व्यक्ति को देखा तो मनःस्थिति समझ गई। बोली– तुम हमारी यात्रा का मर्म नहीं समझ सके। हिमालय कितना भी ऊँचा क्यों न हो, वह पूर्ण नहीं है। पूर्णता तो गहराई में है, जहाँ सारी कामनाएँ निश्शेष हो जाती हैं। मैं हिमालय जैसी महान ऊँचाई की आत्मा हूँ, जो सागर की गहराई में पूर्णता पाने के लिए निकली थी। निरंतर चलते रहकर ही मैंने अपने लक्ष्य को पाया है।**

* * * * *

॥ ओ३म॥

वैदिक संस्कारों से ही मनुष्य में देवत्य का उदय होता है।

उच्च संस्कार मानव को महामानव बनाने की बुनियाद है– आध्यात्मिक व वैज्ञानिक रहस्य

# सुखी समाज की प्राथमिक आवश्यक समस्या

– पं० उम्मेदसिंह

विशारद वैदिक प्रचारक, मो0 9411512019

19वीं शताब्दि में भारत वर्ष में कई ऐसे महामानव हुये जिन्होने सदियों से अन्धकार में पड़े इस देश के भविष्य को पलट दिया। उन्हीं में मूर्धन्य स्थान पर ऋषि दयानन्द सरस्वती जी का नाम आता है। ऋषि दयानंद जी ने वैदिक संस्कृतिक का पुनरूद्धार किया। इसी वैदिक संस्कारों के लिए उन्होने संस्कार विधि की रचना की जिसका मूल उदेश्य था पूर्ण मानव बनने की योजना। संस्कार विधि में मानव के नव निर्माण के लिए सोलह संस्कारों का विधिवत वर्णन है।

संस्कार पद्धति का स्वप्न मानव का रूपान्तरण ही नहीं था अपितु मानव के रूपान्तरण द्वारा युग को बदल देना था। आज जो बच्चे जन्म लेते है बीस बरस बाद युवा हो जाते है। पुरानी पीढ़ी का स्थान लेते है। अगर संस्कार पद्धिति के रहस्य को समझ कर प्रतयेक माता पिता बच्चों के संस्कार विधिनुसार करेगें तो बीस पच्चीस साल बाद एक आदर्श युग का निर्माण होगा। संस्कार विधि में सोलह संस्कारों में आरम्भ के जन्म धारण करने से पूर्ण से ही प्रारम्भ हो जाते है।

**संस्कारो का अर्थ व महत्व–**

संस्कार का अर्थ है किसी वस्तु के रूप को बदल देना है। जैसे कुम्हार मिट्टी का संस्कार करके तरह तरह के बर्तन बना लेता है, कारीगर रूई का संस्कार करके मूल्यवान वस्त्र बना लेताहै। स्वर्णकार सोने चांदी का संस्कार करके मूल्यवान आभूषण बना लेता है किसन भूमि का संस्कार करके भांति भांति की फसलें उत्पन्न करता है। रसोइया अन्न का संस्कार करके विभिन्न व्यंजन बना देता है।

वैज्ञानिक अग्नि जल का संस्कार करके आधुनिक यंत्र बना लेते है। इसी प्रकार वैदिक संस्कृति में मानव जीवन निर्माण के लिए सोलह संस्कारों का विधान है। बाल के जन्म होते ही जन्म होने के पूर्व ही माता के पेट से ही संस्कार प्रारम्भ हो जाते है। और बालक को सोलह संस्कारों की भट्टी में डाल कर उसके दुगर्णों को निकाल कर उसमें सद्गुण डाले जाते है। संस्कारों में पन्द्रह संस्कार स्वंय करने पड़ते है। और सोलाहंवा अन्तिम संस्कार कर्म दूसरों के द्वारा होता है।

**आज परिवारों में संस्कारों के प्रति उपेक्षा को हम अनदेखी कर रहे है–**

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कार विधि में सोलह संस्कार वेदानुसार कराने का विधान किया है। किन्तु भारत निवासी हिन्दु(आर्य) पाश्चात्य संस्कृति में घुलकर अपने परिवारों में बालकों के संस्कारों में केवल खानापूर्ति कर रहे है। परिवारो में नामाकरण, जन्मदिन, विवाह संस्कार व अन्तेष्टि संस्कार ही केवल चार ही संस्कार बहुतायत देखे जा रहे है।

क्या आर्य परिवार महर्षि दयानन्द सरस्वती की आज्ञा का पालन कर रहे है। नहीं हम सभी पाश्चात्य संस्कारों में दिनोंदिन घुसते जा रहे है। जब बालक के जन्म से ही उच्च संस्कार नही होगें तो युवा होने पर चरित्रवान, पितृभक्त, राष्ट्रभक्त, वेदभक्त कैसे बन सकते है। और हम आदर्श समाज की कल्पना कैसे कर सकते

है।

**स्थस्थय समाज के निर्माण का आधार संस्कार पद्धति है–**

संस्कार पद्धति का स्वप्न मानव निर्माण का ही रूपान्तरण नहीं था, अपितु मानव के रूपान्तरण द्वारा हर दो दशक बाद युग बदल देना था। आज जो बच्चे जन्म लेते है बीस बरस बाद युवा हो जाते है। और पुरानी पीढ़ी का स्थान वही लेते है। वे जैसे होगें युग वैसा ही होगा।

जिस प्रकार आज हम युवकों का निर्माण कर रहे है। बीस साल बाद वही समाज के कर्ताधर्ता होगें।

अगर संस्कार पद्धिति के रहस्य को समझ कर हर माता पिता संस्कार विधि के अनुसार अपने बालकों के संस्कार कराने का संकल्प ले ले तो बीस साल बाद सन्तानों के संस्कारों में विषय-लोलुपता, स्वार्थ, तथा भ्रष्टाचार व धार्मिक सामाजिक अन्धविश्वास आदि का अन्त हो सकता है। और आज जो व्याप्त समाज में दुराचार, भ्रष्टाचार, उग्रवादिता, अमानुष्य कृत्य, राजनीति का केंसर फैला हुआ है वह ठीक हो सकता है।

**कर्म से संस्कार कैसे बनता है।**

प्रत्येक जड़ चेतन वस्तु में संचय की शक्ति है, कर्म अनेक होते होते है परन्तु उस कर्म का संस्कार चित्त पर एक हो जाता है और उस एक संस्कार में अनेक कर्म सिमटे रहते हैं। जैसे बीज में सारे का सारा वृक्ष समाया होता है, और उसके पत्ते, फल टहनिया संक्षिप्त रूप में बीज में समाया होता है। हम कर्म तो हजारो करते हैं परन्तु उसका संक्षिप्त रूप संस्कार स्वभाव में बना रहता है। और उसकी प्रविति तदनुसार हो जाती है। उदाहरण रुप में दस रुपये के नोट में एक एक रूपये के दस नोट संक्षिप्त रूप में आ जाते हैं। आज हमारी मूल समस्या संस्कारों में परिवर्तन लाना है। अगर मानव समाज में सोलह संस्कार होने लगे तो प्रत्येक क्षेत्र में भारत में धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिज्ञ का सम्पूर्ण ढाचा ही बदल जायेगा।

**पूर्व जन्म और वर्तमान जन्म के संस्कार सूक्ष्म शरीर में रहते हैं–**

जीवात्मा अमर तथा नित्य हैं, जन्म जन्मान्तरों में उसके साथ सूक्ष्म शरीर मुक्ति प्रचन्त रहता है और यही सूक्ष्म शरीर जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों का वाहन होता है, ये संस्कार शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। जब जीवात्मा दूसरे शरीर में प्रवेश करता है उसको नई परिस्थितियों के भी बहुत से शुभाशुभ प्रभाव मिलते हैं, उनमें बुरे प्रभावों को अभिभूत करने तथा शुभ प्रभावों को उन्नत कराने के लिये उच्च संस्कारों तथा स्वच्छ वातावरण की परम आवश्यकता होती है। क्योंकि पवित्र धार्मिक वातावरण में नये जन्म में पूर्व जन्म के ऊचें संस्कारों का बल मिलता है और बुरे संस्कारों का दमन होता रहता है। इसीलिंये महर्षि दयानन्द जी ने जन्म से मृत्यु तक सोलह संस्कारों पर बल दिया है।

**पूर्व जन्म के सूक्ष्म शरीर पर आसुरी संस्कारों का मर्दन नये जन्म संस्कारों द्वारा सम्भव –**

जो आत्मा नया शरीर धारण रकने वाला है वह कुछ पुराने संस्कारों को लेकर आता है और ये संस्कार उसके कारण शरीर का अंग है। सूक्ष्म शरीर का वह शरीर है जो आत्मा के इस जन्म के मन तथा स्थूल शरीर को बनाता है। नये शरीर का धारण करने वाले माता पिता के रज वीर्य में शुभ अशुभ संस्कार होते हैं। यदि सूक्ष्म शरीर को जो नया शरीर मिला है उसमें यदि पवित्र वैदिक संस्कार का बहुल्य है तो पुराने सूक्ष्म शरीर के बुरे संस्कारों का मदर्न हो जाता है और यदि नये शरीर मे कुसंस्कार होंगें तो पुराने कुसंस्कारों बाहुल्य हो जाता है।

**मानव निर्माण के सोलह संस्कारों के विषरु व नाम : संस्कार विधि पढ़िये**

**१. गर्भाधान संस्कार :** जिस दिन पति पत्नि प्रश्न हो और सन्तान की इच्छा रखते हो उस दिन प्रातः यज्ञ करके दिन भर सात्विक विचार रखे गायत्री मंत्र का जप करते रहे तभी पति पत्नि संयुक्त होंगे।

**२. पुंसवनम संकार :** का समय गर्भ स्थिति ज्ञान हुए समय से दूसरे या तीसरे माह में है। उसी समय यह संस्कार करना चाहिए।

**३. सीमन्तोन्नयनम संस्कार :** जिससे गर्मिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट, आरोग्य, गर्भ स्थिर होवे।

**४. जातकर्म संस्कार :** उपर्युक्त तीन संस्कार सन्तान जब माता के पेट में होती है किये जाते हैं और सन्तान के उत्पन्न होने के बाद जो कर्म किये जाये वे जातकर्म कहलाते हैं।

**५. नामकरण संस्कार :** जिस दिन जन्म हो उस दिन से लेके 10 दिन छोड़ ग्यारहवें व एक सौ एक वें अथवा दूसरे वर्ष के प्रारम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो नाम धे।

**६. निष्कमण संस्कार :** बालक के घर से जहां युद्ध वायु हो स्थान युद्ध हो वहां भ्रमण करना होता है।

**७. अन्नप्रासन संस्कार :** छठे महीने बालक को अन्नप्रासन करावें।

**८. चूड़ाकर्म संस्कार :** यह संस्कार बालक के जन्म के तीसरे वर्ष व एक वर्ष में करना चाहिए।

**९. कर्णवेध संस्कार :** बालक के कमर्ण व नासिका के वेध का समय जन्म से तीसरे व पाचवें वर्ष का उचित हैं।

**१०. उपनयन संस्कार :** जिस दिन जन्म हुआ हो उसके आठवें वर्ष में ब्रह्मण के ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय के बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का यज्ञोपवीत करें।

**११. वेदारम्भ संस्कार :** जिस दिन यज्ञोपवीत संस्कार का है वही वेदारम्भ संस्कार का है।

**१२. समावर्तन संस्कार :** जिसमें ब्रह्मचर्यव्रत साग्डोपाग्ङ वेद विद्या उत्तम भिक्षा और पदार्थ विद्या को पूर्ण रीति से प्राप्त होके विद्यालय को छोड़ घर आना होता है।

**१३. विवाह संस्कार :** उसको कहते हैं जो पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत द्वारा विद्या बल को प्राप्त गुर्ण क्रम स्वभाव में युक्त स्त्री–पुरुष का सम्बन्ध होता है।

**१४. वानप्रस्थ संस्कार :** विवाह से सन्तानोत्पात्ति करके जब पुत्र का भी पुत्र हो जाये तब वानप्रस्थ में जाये।

**१५. सन्यास संस्कार :** जिसमें मोहादि आवरण पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर पृथ्वी पर परोपकार्यरत विचरे।

**१६. अन्त्येष्टि कर्म विधि :** जो शरीर के अन्त का संस्कार है। जिसके आगे उस शरीर के लिये कोई भी अन्य संस्कार नहीं है। इसी को नरमेध, पुरूषमेध, नरयाग पुरुषयाग भी कहते हैं।

**– पं० उम्मेदसिंह**
विशारद वैदिक प्रचारक
गढ़निवास मोहकमपुर देहरादून उत्तराखण्ड
मो0 9411512019

* * * * *

# ब्राह्म मुहूर्त में जाग जाओ
# जीवन का प्रथम व्रत

**प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे, प्रातर्मित्रा वरुणा प्राणरश्विना।**
**प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं मुत रुद्रं हुवेम।।**
**ऋक् मंडल ७ सूक्त ४१ मंत्र ६**

ऋ गतौ इस धातु से कार्य शब्द बनता है। आर्य गर्भात गति शील प्रगति शील– जो सदा श्रेष्ठ मार्ग पर आये बढ़ने का यत्न करता है। इण् गतौ अथवा अयि गत्यर्थे इन धातुओं से अग्नि शब्द बनता है। आर्य और अग्नि दोनों ही शब्द गति प्रगति शीलता के द्योतक हैं। जो प्रगति शील है जो स्वभावतः जीवन में उन्नति करना चाहता है और निरन्तर क्रियाम्कि रूप से उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ता है वही आर्य है। जिस प्रकार बीज से प्रस्फुटित हुवा दोरा स्व अंकुर दिन प्रतिदिन विकसित होत्या है। बदता है और बदता ही जाता है बैसे ही कार्यो के जीवन को निरन्तर उन्नति विकास के दर्शन होने चाहिए। जीवन के हर दिन हमें अपने कदम उन्नति की ओर आगे बढ़ोने चाहिएं।

अग्नि सदा उपर की ओर गति शील रहती है। आग की लपट सदा ऊपर ही जाती है। बस कार्यो का आचरण सदा उन्नत श्रेष्ठ होना चाहिए! तभी हम स्वयं को आर्य कह सकते हैं आर्य किसी भी जाति या नस्ल का द्योतक शब्द नहीं है। आर्य श्रेष्ठगुण श्रेष्ठ कर्म और श्रेष्ठ स्वभाव का धोतक गुणवाची विशेषण भरा शब्द है। जो जीवन में सदा श्रेष्ठता की ओर प्रवृत रहता है। जो प्रभु पिता परमेश्वर की अज्ञानाओं का पालन करने में प्रवृत्त रहता है, जो सद्य अपने गुप कर्म स्वभावों को उस जगन्नि भन्त प्रभु के गुण कर्म स्वभाव के अनुरूप ढालने का यत्न करता है वह आर्य कहाने का अधिकारी होता है।

हवामहे शब्द का अर्थ हे सेवन करें!परमात्मा की स्तुति करने का अभिप्राय है परमात्मा का सेवन करें। उनके गुण कर्म स्वभावों को अपने सामर्थ के अनुसार, अपने भीतर धारण करने का यत्न करें। यही प्रभु की स्तुति का, प्रभु की प्रार्थंना का और उपासना का मूल अभिप्राय है। शब्द मात्र से परमात्मा का स्मरण कर लेना या किसी शब्द या मंत्र को बार बार पढ़ लेना या बोल लेना इतने भर से कुछ क्रियात्मिक लाभ संभव नहीं है।

आज्ञा धारकता कि– हम माता पिता की ,गुरुओं की आज्ञा का यदि पालन करते हैं, उनके आदेश को सिर माथे रख पूरा पालन करते हैं, तभी हम मातृ भक्त पितृ भक्त या गुरुभक्त कहा सकते हैं।

प्रभु की भक्ति का अभिप्राय भी यही है कि प्रभु ने वेदों के माध्यम से जो दिशा निर्देश किया है हम उसे स्वीकार कर उसके अनुरुप अपने जीवन को बिताएँ। इसके अतिरिक्त प्रभु हम सब की आत्माओं में निरन्तर सप्रेरणा यें प्रदान करते हैं। इन अन्तः प्रेरणाओं को स्वीकार कर हम उसके अनुरुप ही आचरण करें! परमात्मा के स्मरण की और भक्ति की यही श्रेष्ठ पद्धति है।

ऋग्वेद के इस मन्त्र के माध्यम से प्रभु हमें प्रेरित करने हैं कि– हम ब्राह्म मुहूर्त सें जाग जाएँ। प्रातः चार बजे विस्तर का परित्याग कर दें। प्रातः काल शीघ्र उठना हमे दुष्कर लगता है! पर प्रातः उठना कठिन नहीं है! प्रातः शीघ्र उठने का सरल उपाय एक मात्र यही है कि–हम रात्र के शीघ्र शयन करें। जल्दी सोने से प्रातः शीघ्र उठना सरल हो जाता है।

मानव जीवन की उन्नति की पहली शर्त यही है कि– हम संकल्प पूर्वक प्रातः शीघ्र उठें! चार बजे जाग जाएँ! आर्य बनने के लिए यही पहली शर्त है। जो प्रातः नियम पूर्वक उठ नहीं सकता वह जीवन की उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ नहीं सकता!

जीवन क्या है? जीवन की उन्नति क्या है? यदि हम विचार करें तो स्पष्ट होगा कि–जीवन नाम हैं शारीरिक उन्नति का दीर्घायु जीने का नाम उन्नत जीवन है!

इस संस्कार में प्रकृति नाम का जो तत्व से परमात्मा ने हमारी इस अनमोल देह का निर्माण किया है। यह मानव देह कितनी अद्‌भुत है? कैसी कैसी सूक्ष्म शक्तियों कैसे कैसे सामर्थ्य हमें हमारे उस प्यारे पिता ने हमें प्रदान किए हैं। हमारा सारा व्यवहार, हमारा सारा व्यापार पांच गुणों पर आधारित है। सुनना और बोलना, सुनने से ज्ञान और बोलने से कर्म होता है। कान ज्ञानेन्द्रिय कहाते हैं और वाक् कर्मेन्द्रिय कहाता है इनका आधार शब्द है।

यह हमारी अद्‌भुत शक्ति है। सारा ज्ञान–विज्ञान का व्यापार शब्द के माध्यम से ही होता है। शब्द ज्ञान का मूल आधार है।

हममें दूसरी शक्ति स्पर्श की है। स्पर्श से हमें अनुभूति होती है। ठण्डा और गरम स्पर्श द्वारा हम जान ते हैं। कोमलता, कठोरता, शीतलता, उष्णता से हम नाना प्रकार के सुखों और दुःखों का अनुभवन करते हैं। इस स्पर्श का व्यवहार हमें त्वचा से होता है और हाथ इसमें सहायक होते हैं। त्वचा से ज्ञान व हाथ से कर्म होता है। स्पर्श का व्यापार प्राय त्वचा व हाथ से होता है।

हमारी तीसरी शक्ति है– देखने की आँखों से हम रुप, रंग, आकार आदि को देखते हैं। यह हमारी तीसरी शकित है।

रूप हमें न्निकट और दूर जाने आने की प्रेरणा देता है। आँखें और पैर इस व्यवहारमें सक्रिय रहते हैं। आँख ज्ञान प्रदान करती है और पैर निकट और दूर आनें–जाने का कर्म करते हैं। आँख ज्ञानेन्द्रिय है पैर कर्मेन्द्रिय है।

हमारी चौथी शक्ति है– रस का ग्रहण करना। नाना प्रकार के स्वाद जिव्हा द्वारा हम ग्रहण करते हैं। खाने पीने का सारा व्यापार इसी रस ग्रहण की शक्ति से सामर्थ्य से होता है। जिव्हा हमारी ज्ञानेन्द्रिय है। और मुख के माध्यम से आस्वादन का व्यवहार या कर्म सिद्ध होता है। जिव्हा ज्ञनानेन्द्रिय है और वाक् या मुख कर्मेन्द्रिय है। वाक् के इन्ट्टी दो व्यवहारों के कारण ही ओं वाक् वाक् दो बार पढ़ा जाता है। बोलना और खाना। बोलना ज्ञान से सम्बन्ध रखता है और खाना कर्म से संम्बन्धित है।

हमारी पाँचवी शक्ति है प्राण, सूंघना, सूँधने से गन्ध का ज्ञान होता है। यह नासिका के द्वारा होता है। इससे सुगन्ध, सूँधने से गन्ध का ज्ञान होता है। यह नासिक के द्वारा होता है। इससे सुगन्ध और दुर्गन्ध का बोध होता है। नासिका ज्ञानेन्द्रिय है और मल मार्ग कर्मेन्द्रिय हैं।

प्रभु पिता परमेश्वर ने इस देह में इन पाँचों प्रकार की शक्तिओं को सामर्थ्य को किस चतुराई से संयोजित कर दिया है। ऐसी अद्‌भुत रचना उस प्रभु की ही है! इन सामर्थ्यों को प्रदान करने के लिए उसने प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ व सूक्ष्म मसाला हमारी देह के निर्माण में प्रयुक्त किया है, जो अनमोल है। इन इन्द्रिंओ के सामर्थ्य का मोल क्या है हमें तब पता चलता है जब वे विकृत होती हैं। फिर संस्कार की सारी दौलत लूटा कर भी उसका नवीनी करण संभव नहीं हो पाता। यह मानव देह संस्कार की सर्वश्रेष्ठ रचना है! प्रभु की हमारे ऊपर की गई सबसे बड़ी कृपा हैं! महान वरदान है। जो शरीर की रक्षा करता है, इसे हर स्तर पर पवित्र व स्वस्थ रखना है, वह प्रभु का भक्त है। शरीर की रक्षा करना या प्यारे प्रभु के द्वारा प्रदत्त इस श्रेष्ठ उपहार की रक्षा करना ही परमात्मा की वास्तविक पूजा है। आराधना है। भक्ति है। इस बात को अपने हृदय पटल पर अंकित कर ले कि– शारीरिक उन्नति परमात्मा की पूजा का प्रथम व श्रेष्ठ तरीका है। इसीलिए हमारी वैदिक सन्ध्या का प्रथम भाग शरीरिक उन्नयन ही है।

शारीरिक उन्नयन की पहली शर्त है कि– रात में जल्दी सो जाओ और प्रातः जल्दी जागो।

अतः यदि आप आर्य बनना ाचहते हैं या आप प्रगति के मार्ग पर उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहते हैं, तो संकल्प करो कि– हम अपने जीवन में इस नियम का जीवन से पालन करेंगें!

उन्नत जीवन का, सुखी जीवन का, सफल दृढ़ता यह प्रथम सोपान है।

इसीलिए जीवन का पहला पाठ, पहली शिक्षा, जीवन की पहली शर्त–जल्दी सो ओ, जल्दी उठो! इसीलिए प्रभु आदेश दे रहे हैं कि–

प्रातरग्नि प्रातरिन्द्रं हवा महे!

प्रातः काल की अग्नि का अर्थात् उगते सूर्य की किरणों का और प्रातः इन्द्रं, प्रातः काल की अत्यन्त शुद्ध पवित्र ायु का सेवन करो–

जो प्रति दिन उगते सूर्य के दर्शन करता है और जो शुद्ध वायु का नियमित ब्राह्म मुहूर्त में सेवन करता है, प्रभु पिता उसे देवहित आयु प्रदान करते है। उगते सूर्य के दर्शन करने से हमारी पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ सदा स्वस्थ और सक्षम बनी रहती है।।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च

ग्रह सूर्य पिण्ड और ब्रह्माण्ड़ दोनों में निरन्तर गति शीतला भरता है मनुष्य ही नही, मनुष्यतर सारे प्राणी, पशु–पक्षी भी चार बजे जाग जाते हैं। केवल निशाचर, जिन्हें अन्धकार की योनि कहा जाता है, जो पतित भ्रष्ट होते है वे ही इस समय आलस्य में डूबे सोते या ऊंघते रहते है।

स्वस्थ मनुष्यों की बात छोडिए, रोगी और बीमार लोगों का भी डॉक्टर और नर्से हास्पिटलों – दवाखानों में चार बजे जगा देते हैं और थर्मा मीटर द्वारा उनके तापमान का विवरण अंकित करते हैं।

मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र पुरुषार्थ है और मुनष्य का सबसे बड़ा दुश्मन आलस्य है।

पुरुषार्थी की पहचान यही है कि जो प्रातः चार बजे उठ जाए वह सबसे बडा पुरुषार्थी है। जो देर तक प्रातः सोते रहते हैं, वे निश्चय से आलसी, प्रमादी व अस्वस्थ रहते हैं।

इसीलिए हर सुबह हम इस पाठ को, परमात्मा के इस आदेश को दोहराते हैं कि–

प्रातरग्निप्रातरिन्द्रं हवामहे

इस मंत्र को हम पढ़ते भी रहें और इस आदेश की अवहेलता भी करते रहे, तो यह परमात्मा की स्तुति कहाएगी या उपहास? सोचिए और गंभीत से सोचिए!

कब तक हम अभिनय का जीवन और नाटकीय जीवन जीते रहेगें।

प्रभु मंत्र में आगे कहते हैं कि– यदि प्रातः काल शीघ्र उठकर सुबह पूर्व दिशा से आ रही कोमल सौर ऊर्जा का भक्षण करोगे और प्रातः कालीन शुद्ध ताजी हवा का पान करोगे तो इसका परिणाम क्या होगा?

प्रातः मित्रा–वरुणा। प्रातः अश्विना। प्रातर भगं पूषणं ब्रह्मणस्पति प्रातः सोमं उत्रुद्रं हुवेक!

हमारे देह में स्थित प्राण और अपान शक्ति अर्थात् श्वासोद्धावास की प्रक्रिया स्वस्थ व सबल रहेगी। हमारी दायीं नाक से सौर शक्ति और बाँयी नासिक से चन्द्र शक्ति का अधिग्रहण ठीक ठीक होगा ! दिन में दायी नासिका से श्वास चलेगा और रात्रि में सो जाने पर बांयी नासिका से श्वास चलेगा, इसमें व्यतिक्रम या व्यवधान नही होगा! बाधा और अनियमितता नही आएगी। जिस प्रकार प्रातःकाल के वातावरण में ताजगी व सजीवत दृष्टिगोचर होती है ऐसा ही ऐश्वर्य हमारे देह में व्याप्त होगा स्फूर्ति और ताजगी बनी रहेगी।

शरीर में पुष्टि बढ़ेगी। हम ह्रष्ट पुष्ट बने रहेगे। सोम शान्ति का आधार होगा। हम शान्त व प्रसन्न चित्त, गुणग्राही बनेने और रुद्रं रोगों का भगाने और बुराई सेबचने की रुद्र प्रवृत्ति हममें सदा बनी रहेगी।

ये सारे लाभ प्रातः काल जागने वाले व्यक्ति को उपलब्ध होते हैं।

आज हमारे जीवन में आलस्य, निराशा, अशान्ति, अस्वस्थता का साम्राज्य क्यों छा गया है। क्या हम आर्य हैं? उन्नति की पहली शर्त को माननेमें समुद्यत हैं तो प्यारे आस्तिक जनो, परमात्मा के इस आदेश का पालन करो!

मन्त्र पढ़ने का अभिप्राय मंत्रोक्त विचारों को आचरण में ढालना है। टेप रेकार्डर की तरह बजने या तोते जैसा रटने से कोई लाभ नहीं होगा।

प्यारे मित्र परिवार के सदस्यो। जीवन के इस पहले पाठ को जीवन वें धारण करो।

वास्तव में आर्य बनो! आर्य बनने का यत्न करो! अपने परिवार में इस शिक्षा को क्रियात्मिक रुप प्रदान करोगे तो इन उत्तम-उत्तम, फलों को, सुख को प्राप्त करोगे अन्यथा अपने आप को आस्तिक मानने हुए भी हम नास्तिकों की श्रेणी में चले जाएँगे!

स्वाध्याय इसी का नाम है। चारों और से सुख के मार्ग में प्रकृत कराने वाला विचार जब जीवन में क्रियात्मिक स्वरूप धारण कर लेता है, तभी स्वाध्याय कहाता है।

आपके परिवार में प्रभु के इस आदेश का पालन हो ता है तो आप धन्यवाद के पात्र हैं। हम आपको बधाई देते हैं।

दुर्भाग्य से यदि ऐसा नहीं हो ता है तो हम आपके साब धान करना चाहते हैं कि - जागो। चेतो ओर आर्य बनने की दिशा में प्रथम पग के रुप में इस शिक्षा को जीवन में चरितार्थ करो।

हमें विश्वास है कि- हम अपनी जीवन यात्रा अब नए रूप में आरंभ करेंगे। सुनहरे दिन आपकी वाट जोह रहे हैं।

– आचार्य वेद भूषण

* * * * *

**बात उन दिनों की है, जब कौशल नरेश बौद्ध धर्म को राजधर्म बनाना चाहते थे। उन्होंने मुख्य श्रमण से पूछा- संघं शरणं गच्छामि, के अनुसार बुद्ध मतानुयायी को बौद्ध विहारों में भिक्षु संघ के साथ रहना होग क्या? प्रधान भिक्षु ने कहा- राजन्! संघ शब्द केवल भिक्षु संघ तक सीमित नहीं। यह तो सामाजिकता का पर्याय है। व्यक्ति कितना भी विद्वान और कितना भी धर्मपरायण हो, पर यदि समाजनिष्ठ नहीं हो तो वह समस्या पैदा करने वाला ही बन जाता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे समाज को लक्ष्य करके आचरण और मर्यादाओं का निर्धारण करना आना ही चाहिए। सामूहिकता, संगठन, संघबद्धता की अनिवार्यता यह सूत्र बतलाता है।**

* * * * *

॥ ओ३म्॥

# सृष्टि उत्पत्ति में एकत्वाद, द्वैतवाद या त्रेतवाद या बहुत्वाद वर्तमान युग में त्रेतवाद का प्रतिपादन महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी ने किया

– पं० उम्मेदसिंह विशारद
वैदिक प्रचारक
मो0 9411512019

आत्मा और ईश्वर के दो तत्वों के अतिरिक्त भौतिक द्रव्य एक तीसरा तत्व है, इसलिए वैज्ञानिक दृष्टि से यह विचार करना आवश्यक है कि सृष्टि उत्पत्ति में मूल तत्व कितने है। मूलभूत तत्वों के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से मुख्य तौर पर निम्न विचार धाराओं पर विचार किया जाता है।

**एकत्ववाद**

एकत्वाद का सिद्धान्त कहता है कि या तो जड से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है या चेतन से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। अगर जड से सृष्टि का निर्माण माने तो मानना पड़ता है कि भौतिक द्रव्य (प्रकृति) से ही जीवन की उत्पत्ति हुई है। ये लोग जड़ से जीवन की उत्पत्ति मानते है, किन्तु आत्मा–परमात्मा जैसे तत्व नहीं मानते। यह धारणा प्राचीन युग के चार्वाकों ने की है, वर्तमान युग के जड़वादियों भौतिक वादियों की है। अगर चेतन से सृष्टि का निर्माण माने तो मानना पड़ता है कि चेतन तत्व से ही भौतिक द्रवय (प्रकृति) की उत्पत्ति हुई है। ये लोग भौतिक द्रव्य तथा जीवात्मा की पृथक, स्वतन्त्र, अनादि सता नहीं मानतो। यह धारणा भारतीय दार्शनिकों में मुख्य तौर पर शंकराचार्य (788–820) के वेदान्त सिद्धान्त के पाश्चात्य दार्शनिकों में मुख्य तौर स्पाइनोजा (1632–1677) तथा बर्कले (1685–1753) की और मत वादियों में यहूदी, ईसाई व मुसलमानों की है। यहूदी, इसाई तथा मुसलमान मानते है कि ईश्वर एक है, उसी ने अभाव से नेस्ति से जगत तथा जीव को उत्पन्न कर दिया। भारत में इस मत के प्रवर्तक आचार्य बृहस्पति माने जाते हैं। चार्वाक का अर्थ है, चारु वाक मीठी वाणी बोलने वाला। उनका कहना है कि न कोई ईश्वर है न जीव है, यह देह ही सब कुछ है। देह नष्ट हुआ सब कुछ समाप्त हो गया। मानव देह पृथ्वी, अप,तेज, वायु तत्वों से देह तथा संसार बना है।

प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जब ये चार तत्वों से जड़ परमाणुओं के मिश्रण से बने है, तब इन जड़ तत्वों के मिश्रण से चेतन तत्व जीव कैसे उत्पन्न हुआ।

चार्वाक का उत्तर : जिस प्रकार दही और गोबर मिला देने से कीड़े उत्पन्न हो जाते है, इसी प्रकार भिन्न–भिन्न परमाणुओं के एक विशेष प्रकार विशेष मात्रा से मिलने से आत्मा उत्पन्न हो जाता है। वर्तमान विज्ञान का उदाहरण लिया जाए तो जैसे हाइड्रोजन तथा आक्सीजन दोनों अदृश्य तत्व है इन दोनों के एक विशेष मात्रा में सम्मिश्रण से जल नामक तत्व उत्पन्न हो जाता है जो इन दोनों से भिन्न है, वैसे ही भिन्न भिन्न जड़ परमाणुओं के मिश्रण से उनसे भिन्न भिन्न तत्व उत्पन्न हो जाता है। उत्तर है कि दही और गोबर को तथा हाईड्रोजन तथा आक्सीजन को तो मिलाने वाली दूसरी चेतन हस्ती होती है। कलेवर बढ़ने के कारण एकत्ववाद को यहीं विराम देते है।

## द्वैतवाद

द्वैतवाद का सिद्धान्त यह है कि मूलभूत सताऐं दो हैं – जीवन तथा प्रकृति। यह धारणा सांख्य दर्शन की कही जाती है। सांख्य दर्शन के रचयिता महर्षि कपिल थे। सांख्य दर्शन को निरीखर सांख्य कहा जाता है। ऋषि दयानन्द जी ने सांख्य को सेश्वरवादी ही माना है। सांख्य का मुख्य विषय प्रकृति तथा पुरुष जड़ तथा चेतन इन दो तत्वों पर विचार करना है।

भारतीय दर्शन शास्त्र में एकत्ववाद के विरुद्ध सबसे पहले प्रबल आवाज सांख्यकार महर्षि कपिल ने उठाई। उनका कहना है कि सृष्टि में अन्तिम सता में एक तत्व मानने से काम नहीं चल सकता। जड़ तथा चेतन दो सताओं को तो मानना ही पड़ेगा तभी सृष्टि उत्पत्ति की समस्या समाधान हो सकता है। इस विचार को सांख्य दर्शन का प्रकृति पुरुष का सिद्धान्त कहा जाता है। द्वैतवाद के आचार्यों का मत है एक सता जड़ है दूसरी चेतन। उनका कहना है कि सृष्टि की समस्या को समझने के लिए इन दो को तो मानना ही पड़ेगा। चेतन भी एक की जगह दो है; एक आत्मा दूसरा परमात्मा।

सांख्यमतानुसार जब सरकार्यवाद सिद्ध हो जाता है तब यह मत अपने आप ही गिर जाता है, कि दृश्य सृष्टि की उत्पत्ति शून्य से हुई है अर्थात जो कुछ है ही नहीं उससे जो अस्तित्व है वह उत्पन्न नहीं हो सकता। इस बात से साफ सिद्ध होता है कि सृष्टि किसी न किसी पदार्थ से उत्पन्न हुई है और इस समय सृष्टि में जो गुण हमें दीख पड़ते है वे ही इस मूल पदार्थ में होने चाहिए। अब यदि हम सृष्टि की ओर देखे तो हम वृक्ष–पशु–मनुष्य, पत्थर–सोना–चांदी, हीरा, जल–वायु अनेक पदार्थ दीख पड़ते हैं, इन सबके रुप तथा गुण भिन्न भिन्न है। सांख्यवादियों का सिद्धान्त है कि यह भिन्नता तथा नानात्व आदि में अर्थात मूल पदार्थ में तो नहीं दीखता किन्तु मूल में सबका द्रव्य एक ही है। अर्वाचीन रसायन शाख्यओं ने भी भिन्न भिन्न द्रव्यों का पृथककरण करके पहले 62 मूल तत्व फिर 92 ओर अब 105 ढूंढ़ निकाले थे। अब पश्चिमी विज्ञान बेताओं ने भी यह निश्चय कर लिया है कि ये मूल तत्व स्वतन्य वा स्वयं सिद्ध नहीं है। इन सबकी जड़ में कोई न कोई एक ही पदार्थ है, उस पदार्थ में जो मूल पृथ्वी तारागण की सृष्टि उत्पन्न हुई है। जगत के सब पदार्थों में जो मूल द्रव्य है उसे ही सांख्य दर्शन में प्रकृति कहते हैं। सांख्यवादियों ने सब पदार्थों का निरीक्षण करके पदार्थों में तीन गुणों को पाया है सत्व, रज तथा तम इसलिए मूल द्रव्य में प्रकृति में भी इन तीन गुणों को मानते हैं। जिसके कारण प्रकृति में नानात्व पाया जाता है, एक प्रकृति से इन तीन गुणों के कारण अनेक पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं। सांख्य का कथन है कि सांसारिक जड़ पदार्थों की मूल सता प्रकृति है। जिस प्रकार सांख्य जड़ प्रकृति की मूल सता मानता है उसी प्रकार चेतन को भी मूल सता मानता है। इसी चेतन को पुरुष, क्षेत्रज्ञ तथा अक्षर कहा गया है।

समीक्षा : हमने देखा भारतीय चिन्तकों में जहां एकत्वादी थे, वहां द्वित्ववादी भी थे जिनका कहना है कि सृष्टि उत्पत्ति की समस्या सिर्फ एक मूल सता को मानने से हल नहीं होती । चाहे जड़ को मूल सता माने चाहे चेतन को जड़ से चेतन उत्पन्न हनीं हो सकता, न चेतन से जड़ उत्पन्न हो सकता है, क्योंकि यह दोनों तत्व एक दूसरे से भिन्न है। इसलिए इन सब नाना रूपी जड़ रूपों को एक में समाविष्ट कर जड़ प्रकृति का नाम दे दिया गया। वैसे ही चेतन में अल्पत चेतन और सर्वज्ञ चेतन ये मूल तत्व भी हो यह तीनों शब्द पिण्ड में आत्मा तथा ब्रह्मण्ड में परमात्मा पर एक समान घटित हो जाते हैं। विचार किया जाता है सांख्य, उपनिषिद आदि में ईश्वर जीव प्रकृति इन तीनों मूल सताओं को स्वीकार करते हैं।

## त्रेतवाद

त्रेतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती जी

त्रैतवाद का सिद्धान्त है कि किसी वस्तु के निर्माण में तीन प्रकार के कारणोंका होना आवश्यक है। वे है उपादान कारण, निमित कारण तथा साधारण कारण। इन्हें क्रमशः समवायी कारण, निमित कारण तथा असमयावी (अकारिक कारण)। उदाहरणार्थ हम घड़े का दृष्टान्त लेते है।। उपादान या समवायी कारण वह है जिसके बिना घड़ा न बन सके, जो स्वयं रूप बदलकर घड़ा बन जाए। इस परिभाषा से मिट्टी घड़े का उपादान कारण या समवायी कारण हुआ। निमित कारण वह है, जिसके बनाने से कुछ न बने, न बनाने से न बने, आप बने नहीं दूसरे को प्रकारान्तर से बना दे। इस परिभाषा में कुम्हार घड़े का निमित कारण हुआ। साधारण कारण वह है जो किसी वस्तु के बनाने में साधन हो या साधारण निमित हो। इस परिभाषा में कुम्हार का गोल चाक आदि घड़े केनिर्माण में साधारण कारण हुआ।

त्रैतवाद का या बहुत्ववाद वह सिद्धान्त है जो कहता है मूल भूत सताऐं तीन है। ये मूलभूत सताऐं हैं ईश्वर जीव तथा प्रकृति। वेदों में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन है। रामानुजाचार्य (जन्म 1017) मध्वाचार्य (जन्म 1119) भी ईश्वर तथा जीव की अलग अलग सताऐं मानते थे। वर्तमान युग में त्रैतवाद का प्रतिपादन महर्षि दयानन्द (1824-1883) ने किया ओर अनेको पण्डितों ने सांख्य दर्शन के सूत्रों का भाष्य त्रैतवाद ही किया है। तीन मूल भूत सताओं ईश्वर जीव प्रकृति के सिद्धान्त को हमने त्रैतवाद या बहुत्ववाद की श्रेणी में रखा है।

सृष्टि का उपादन कारण प्रकृति है परमाणु है। यह उपादान कारण न होतो सृष्टि बन नहीं सकती। सृष्टि का निमितकारण ब्रह्म या ईश्वर है। वैसे सृष्टि में प्रकृति ने नाना प्रकार ब्रह्माण्ड में सूर्य-चन्द्र-पृथ्वी-अप-तेज-वायु-आकाश आदि तथा पिंड में ज्ञानेन्द्रियां कर्मेन्द्रिया आदि साधारण कारण है। जैसे कुम्हार द्वारा निर्मित घड़े का उद्देश्य पानी भरना है, वैसे सृष्टि का उद्देश्य जीवात्मा को कर्म फल देना होता है। उसे विकास के मार्ग पर डाल देता है। प्रकृति परमेश्वर के साथ जीवात्मा न हो तो सृष्टि का संचालन खेल मात्र रह जाता है।

इन सब कारणों से सृष्टि की रचना में न एकत्ववाद से काम चलताहै न द्वित्ववाद से काम चलता है। त्रित्वाद से ही इस समस्या का समाधान हो सकता है। उपनिषिदों गीता सांख्य में त्रैतवाद माना है।

**वेदो में त्रैतवादः द्वा सुपर्णा सयुजा समानं वृक्षं परिषस्वजाते**

**तयोरन्यः पिप्पलं स्वादु अति अनश्नन अन्यः अभि चाकशीति।। (ऋ०)**

**बालात एकम अणीयस्कम उत एकं नैव दृश्यते।**

**ततः परिण्वजीयसी देवता सा मम प्रिया।। (अर्थववेद)**

पिण्ड रुपी वृक्ष तथा ब्रह्माण्ड रुपी वृक्ष में वह जीव रुपी पक्षी पिण्ड में इन्द्रियों का तथा ब्रह्माण्ड में सांसारिक विषयों मीठा मीठा लुभावना भोग ले रहा है, दूसरा परमेश्वर रुपी पक्षी जीवात्मा द्वारा किये गये रुपी कर्मों का फल देने के लिए उसकी गति विविध को देखता रहता है।

नोट :- इस लेख का सारांश वेदों में वैज्ञानिक रहस्य लेखक डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार से लिया गया है।

**- पं० उम्मेदसिंह विशारद वैदिक प्रचारक**
गढ़निवास मोहकमपुर देहरादून उत्तराखण्ड
मो0 9411512019

* * * * *

# - मधुर स्मृतियाँ -

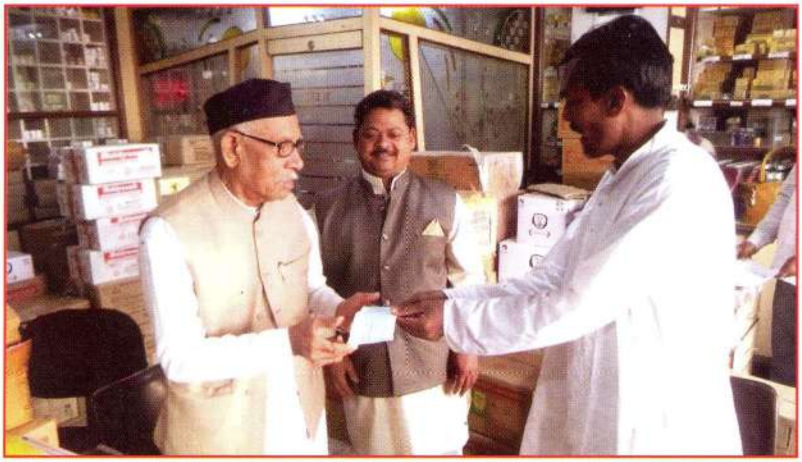

आर्य समाज बेलखेड द्वारा संचालित डी.ए.व्ही. स्कूल को दान देते हुए
दानवीर राव हरीशचंद्रजी आर्य

आर्य सन्यासियों के सानिध्य में

आर्य जगत के वरिष्ठों का सम्मन करते हुए

## आर्य सेवक, नागपुर

प्रति, ______________________________

______________________________

DP 440001 26.02.2020 4A1E 21834238 P140745 भारत INDIA POSTAGE ₹7.00

प्रकाशक : अशोक यादव, प्रबंधक संपादक एवं मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा
मध्यप्रदेश एवं विदर्भ, नागपुर फोन : ०७१२-२५९५५५६ द्वारा उक्त सभा के लिये प्रकाशित एवं प्रसारित
मुद्रक : स्क्रीन पॉईन्ट ॲन्ड डिझाईनिंग, रेशिमबाग, नागपूर. मो.नं.: ९३२६५१५७८५